भ्रष्टाचार की पाठशाला

सत्यप्रकाश अग्रवाल 'उमंग'



रचना" सुघड और सुन्दर हैं और 'तबीयत' स लिखा गइ हैं मरा बधाइ स्वाकार करा। **आनन्दप्रकाश जैन, मुबई**

व्य"य क अवश्यक काटाणु आपक लखन म हैं।

बालेन्दुशेखर तिवारी, रांची

मैं अब इतना वृद्ध हा गया हू कि चश्म का सहायता स भी कोइ चाज आठ-दस मिनट स अधिक दर तक नही पढ पाता। परन्तु आपका व्य"य इतना रोचक था कि पढना हा गया।

डॉ हरदेव बाहरी, इलाहाबाद

आपक व्य"य म ताखापन है जा विडबनाआ का परत-दर-परत उखाडता चलता है व्य"य म केवल विषयवस्तु क चयन का हा महत्त्व नही हाता भषा भा महत्त्वपूण हाती है। रचनाआ म शब्द-चयन वाक्य म शब्द का उचित स्थानाकन और अथ क विभिन्न स्तर क अनुरूप शब्द का वक्र-भगिमा का प्रयाग साच-समझकर किया गया है। **विलास गुप्ते, इन्दौर**

आप म किस्सागाइ कला तदनुरूप भाषा-प्रयाग तथा राचक अभिव्यक्ति है जिसम कि इतना बडा रचना भा एक ही बार (सास) म पढ ला गइ। **हरीश नवल, नई दिल्ली**

शैला बहुत हा प्रवाहयुक्त तथा पात्रा का चित्रण बहुत हा मनावैज्ञानिक है। पूरा रचना म सहजता और स्वाभाविकता भरी पडा है। आपका सूक्ष्म निराक्षण शक्ति भा गजब का है। इसस रचना म बडा जावन्तता तथा चित्रात्मकता आ गई है। लगता है कि सारी घटनाए आखा क सामन हा रहा हैं।

द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, आगरा

कहा-कही बडी पैना चाट है और सवत्र पाठक को बाध पाने की सक्षमता। बधाइ स्वाकार। **डॉ पुष्पपाल सिह, पटियाला**

गुणवत्ता और आकार — दाना दृष्टि स रचनाए उत्कृष्ट हैं मेरी आर स बधाइ स्वाकार कर। **हरि जोशी, भोपाल**

सभवत पिछल दस वर्षो म मुझ पत्र-पत्रिकाआ मे ऐसी व्यग्य-रचना ('आकाश म सूराख') पढने का नही मिली।

शकर पुणताम्बेकर, जलगाव

आप म किसा स्थिति का राचक विस्तार देन की क्षमता और प्रतिभा है। **लतीफ घोंघी/ईश्वर शर्मा, महासमुन्द**

मैं आपको इस अच्छा रचना (अक्ल बडी या भैंस') के लिए बहुत-बहुत बधाइ दना चाहूगा। किस प्रकार एक लोकतात्रिक आन्दोलन भटकता जाता है या कि भटका दिया जाता है इसका आपने इसम बड प्रभावशाला तरीके से वर्णन किया है। एक बार पुन बधाइ स्वाकार करे। **डॉ विजय अग्रवाल, नई दिल्ली**

भ्रष्टाचार की पाठशाला

प्रो० राजेन्द्र कुमार वर्मा जी
की प्रतिष्ठा में,

लेखक के विनम्र अभिनन्दन सहित

[illegible]
1 10 96

अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली-32

भ्रष्टाचार
की
पाठशाला

मूल्य मौ रुपये/प्रथम सस्करण 1996/आवरण-शिल्पी सत्यसेवक मुखर्जी/
प्रकाशक अभिरुचि प्रकाशन 3/114 कर्ण गली विश्वासनगर, शाहदरा
दिल्ली-32/शब्द-सयोजन बसल लेजर प्रिटर्स दिल्ली-32/मुद्रक सजय प्रिटर्स
दिल्ली-32

BHRASHTACHAR KI PATHSHALA Satva Prakash Agarwal Umang Rs 100 00

बालसखा श्री रमेशकुमार माहेश्वरी की याद को

जो वर्ष 1965 की अल्पावधि में मुझे छोडकर चला गया था लेकिन एक लेखक के सभी सस्कार मुझमें भर गया था। निरतर लगभग तीस वर्षों तक जिन्हें दबाए-छिपाए रखकर मैंने जिस निर्मोही के साथ आज तक विश्वासघात ही किया है।

–सत्यप्रकाश अग्रवाल 'उमग'
रघु भवन
1127, पी एल शर्मा रोड
मेरठ–250001

प्रारम्भिक वार्ता

मेरा पहला व्यग्य-सग्रह आपके हाथो मे है। इसका शीषक भ्रष्टाचार' से इसलिए सबंधित है कि यही वह 'अचार' है जो आजकल बेहद पसद किया जा रहा है, जी भरकर खाया जाता है और जी भरकर खिलाया जाता है। प्रजातत्र के चारो स्तभ आजकल इस अचार के चटखारे ले रहे हैं। कुछ खा-खिलाकर कुछ चर्चा करके और शेष उपचार-हेतु। बचा कोई नहीं है। अछूता कोइ नहीं रहा। फिर भला मेरा यह व्यग्य-सग्रह कैसे बच पाता।

मैंने इसमे कुछ नया नहीं कहा हैं। शायद एक भी बात ऐसी न होगी जिसे आप पहले से न जानते हो, न सुना हो, न भोगा हो न सहा हो। लेकिन जिन बातो को आप सुन-समझ, भोग और सहकर भी चुप लगा गए थे, मैंने उन्हे बस लिपिबद्ध कर दिया है-अपनी भाषा मे नहीं, आपकी भाषा मे। इसलिए नही कि मै आपको आईना दिखाना चाहता हू। भला मेरी ऐसी जुरत। बस इसलिए कि सनद रहे और वक्त जरूरत काम आए।

हा, देखने के कोण का अतर हो सकता हैं। जो गिलास आधा भरा हुआ होता है वह गिलास आधा खाली भी होता है। अब आप उसे आधा खाली कहे या आधा भरा हुआ, यह आपके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। मैंने जीवन को, घटनाओ को, स्थितियो को, विसगतियो को अपने कोण से देखा है। आपको उससे असहमत होने का पूरा अधिकार है। आप आधे खाली गिलास को दावे के साथ 'आधा भरा हुआ' कह सकते है। मैं आपके सभी दावों से सहमत हो जाऊगा। लेकिन अगर मेरा 'कोण' कहीं आपको सहला जाए, चुभ जाए, टीस दे जाए या गुद्‌गुदा जाए तो मैं अपने को सौभाग्यशाली समझूगा।

अध्ययन-काल मे लगभग 1960-65 के बीच बालसखा स्व० श्री रमेश-कुमार माहेश्वरी, अग्रज श्री आनन्दप्रकाश जैन, स्व० लाडली मोहन कविवर भारतभूषण आदि साहित्यकार बधुओ के सान्निध्य और सगत ने जो सस्कार दिए थे वे लगभग तीस वर्ष तक व्यापारिक व्यस्तताओ के नीचे दबे-ढके रहे थे। हा, उन पर व्यावहारिक अनुभवो की परते जरूर चढती रही होगी। एम० ए० (हिदी) के सहपाठी और वर्तमान मे मेरठ कॉलेज के हिदी विभागाध्यक्ष डॉ०

मानसिह वर्मा ने इस दबी-ढकी चिनगारी को न जाने कैसे भाप लिया और पूरे मनोयोग से कुरेद दिया। पखा झलने का काम किया मेरे एक परिचित श्री अमरनाथ ने। वही अगारा भभककर जल उठा है इस व्यग्य सग्रह 'भ्रष्टाचार की पाठशाला' मे। कभी-कभी मुझे लगता है कि यदि ये दोनो महानुभाव मेरे दबे-ढके सस्कारो को कुरेदकर हवा न देते तो सभवतया मै लेखन के लिए समय न निकाल पाता। इस दृष्टिकोण से इनका योगदान महत्त्वपूर्ण है और मेरा लेखन-धम इनका अनुगहीत है। जब लेनदार सशक्त होता है तो देनदार बच नहीं पाता। सोचता हू, अनुभवो से जीवन मे जो पाया है, उसे लगे हाथो लिख-पढकर मय सूद वापस लौटा दू।

सकलन के अधिकाश व्यग्यो को अमर उजाला सबरग नवभारत टाइम्स, कादंबिनी आदि पत्र-पत्रिकाओ ने समय-समय पर चाव से छापा है और पाठको ने ढेर पत्रो से सराहा है।

सग्रह आपके हाथो मे है। प्रतिक्रिया पर आपका एकाधिकार है। मेरे हिस्से मे अगर दो-चार ककड-पत्थर आ जाए तो उन्हे मै सहेज कर फाइल कवर मे रख लूगा। भविष्य के लेखन के लिए वही मेरी ऊर्जा होगे।

सत्यप्रकाश अग्रवाल 'उमग'

क्रम

आकाश में सूराख

हिदी गजल को शोहरत दिलाने वाले प्रख्यात शायर स्व॰ दुष्यत का नामा-गिरामी शेर पढकर अनोखेलाल जी तैश खा गए। शेर था–

> "कौन कहता है आकाश मे सूराख नहीं हो सकता
> एक पत्थर तो तबीयत से उछालो, यारो।"

क्या जमाना आ गया है। क्या जानदार शेर हैं। सभी लोहा मानते है पर अभी तक आसमान मे सूराख नही हुआ। लोग-बाग कितने काहिल और नाकारा हो गए हैं। मजा ले-लेकर शेर तो पढते हैं गुनगुनाते हैं सुनते हैं सुनाते है दाद देते है, दाद लेते है लेकिन पत्थर उछालने की जहमत नहीं उठाते। सूराख नहीं करते। भला क्यो?

अरे भई, शेर कहा है और काबिले-दाद कहा है तो फिर कर दो सूराख आसमान मे। यह कोई गैरकानूनी काम तो है नही जो डरा जाए। किसी आई॰ पी॰ सी॰ मे आसमान मे सूराख करने पर किसी दड का प्रावधान नहीं है, फिर सूराख क्यो नही हो रहा है आसमान मे। इस तरफ अब तक किसी ने गौर क्यो नहीं किया? न्यूटन से पहले पेड से फल गिरने पर भी किसी ने गौर नहीं फरमाया था। आदिकाल से फल पेड से पृथ्वी पर ही गिर रहे थे और इस पर गौर फरमाने के लिए न्यूटन का इतजार कर रहे थे। शायद आसमान मे सूराख करने के लिए उनका ही जन्म-जन्मान्तर से इतजार हो रहा है यह सोचकर अनोखेलाल जी ने पत्थर उछालने की ठान ली।

सबसे पहले एक अदद पत्थर की जरूरत दरपेश हुई। शायर महोदय ने पत्थर के आकार-प्रकार, लबाई-चौडाइ छोट-बडाइ पर कोइ रोशनी नहीं डाली थी। शायद यह पत्थर उछालनेवाले की सामर्थ्य और श्रद्धा पर छोड दिया हो या फिर सोचा होगा कि जितना बडा सूराख करना चाहेगा उतना ही बडा पत्थर अपने आप चुन लेगा। कुछ भी हो, यह गहन गभीर विषय था कि पत्थर कैसा हो? कितना बडा हो? आखिर को अनोखेलाल जी एक ऐतिहासिक काम करने जा रहे थे आसमान मे सूराख करने का। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धात की खोज से

अ— बड नह तो उससे कम भी नही। बस समकक्ष समझो। बाद को चचा हो— परिचचा होगी कि पत्थर का चुनाव कैसे हुआ। इस पर मतभेद होगे। विद्वान लोग ने खेमा म बँटेगे। आपस मे कीचड उछालेगे। वाद-विवाद करेगे। इस सबसे अच्छा ह कि पहले से ही पत्थर का उपयुक्त चुनाव किया जाए और उस सुदृट आधार प्रदान कर दिया जाए ताकि कल को यह मुद्दा नोक-झोक का विषय न बन सके लाखो-करोडे रुपये का कागज, स्याही, समय और दिमाग फिजूल खच न हो। सो अनोखेलाल जी पत्थर के चुनाव का सुदृढ आधार खोजने पर लग गये।

गभीर विषयो पर सलाह-मशवरो से अनोखेलाल जी को परहेज नहीं होता। यह उनका उदार आदत ह। समस्या अकेले उनका ही सिर क्यो खाये। परेशानी म सहअस्तित्व और सहकारिता के सिद्धात के वह कायल है। सो मेरे पास आ टपके "भाइ साहब। पत्थर के विषय मे आपका मशवरा चाहता हू।"

सदभ स अनभिज्ञ हमने जिज्ञासा की "आगन मे लगवाना है?"

"नहीं उछालना है"। उनका सहज संक्षिप्त उत्तर था।

हमारे सारे रोम-छिद्र सतक हो गए' हम अनोखेलाल जी के पडोसी है और वह उछालने के लिए पत्थर पर मशवरा चाह रहे थे। सीधी-सीधी धमकी थी, चेतावनी थी या फिर आक्रोश था। पर जो भी था उसका सिर-पैर हमे ज्ञात न था। सो सारा ध्यान केंद्रित करके पूछा "क्या मामला है? हमसे कुछ गलती हो गयी?"

अनोखेलाल जी ने उसी गभीरता से उत्तर दिया "आपसे कोई गलती नही हुई है पर मुझे ही एक पत्थर उछालकर आसमान मे छेद करना है।" और विस्तार से अपनी समस्या सुना दी।

मामला अत्यत ऐतिहासिक था। गिनीज बुक रिकार्ड से निकलकर नोबल प्राइज की सभावनाओ तक से जुडा था। न्यूटन की असली औलाद प्रसव-गृह मे छटपटा रही थी। सो हम भी गभीर हो गए। सुझाव दिया, "पत्थर कम-से-कम सगमरमर का तो होना ही चाहिए जो आकाश मे छेद कर जब स्वर्गलोक मे जाए तो पृथ्वी की उन्नति एव भव्यता का सही प्रतिनिधित्व कर सके।"

सुझाव अनोखेलाल जी को भाया। उन्होंने सहमत होते हुए आगे पूछा "और आकार-प्रकार? लबाइ-चौडाई?"

हमने फिर गभीर मथन किया "ऐसा होना चाहिए कि अगर स्वर्गलोक मे किसी को लग भी जाए तो गभीर चोट न आए। इससे दोनो लोको की सद्भावना पर आच नही आ पाएगी। मधुर सबध बने रहेगे। वरना समझ लो मत्यु के बाद कोई स्वग मे घुसने भी नहीं देगा।"

सुझाव सतर्क था। प्रतिवाद का गुजाइश न थी सो स्वीकार हो गया।

आसमान मे सूराख करने के लिए एक छोटा गोल सगमरमरी पत्थर काफी देखभाल करके अनोखेलाल जी बाजार से खरीद लाए।

आकाश मे सूराख करने के बाद ऐतिहासिक पत्थर की भूलोक पर वापस लाट आने की कोई सभावना नही थी। भविष्य मे इस ऐतिहासिक पत्थर पर बडी-बडी टीका-टिप्पणियाँ भी सभावित थी। इन पर अखबारो का टनो कागज काला-पीला या लाल-नीला हो सकता था। अत एहतियात के तार पर और मीडिया की सुलभता के लिए अनोखेलाल जी ने इस सगमरमरा पत्थर के चार एगिलो से चार कलर्ड फोटो खिचवा लिये।

मान्यता प्राप्त प्रकाड पंडित ज्योतिषाचार्य से शुभ-मुहूत निकलवाया गया और ठीक शुभ मुहूर्त पर एक वीडियो कैमरे सहित अनोखेलाल जी अपने मकान की सबसे ऊची छत पर चढ गए। कैमरामन के अतिरिक्त साक्षी के लिए मुझे भी साथ रखा गया था। इस ऐतिहासिक घटना के प्रत्यक्षदर्शी होने का लोभ अनोखेलाल जी के घर-परिवारवाले भी सवरण नहीं कर पाए थे। वे भी दल-बल सहित छत पर आ जमे थे।

अनोखेलाल जी फिर भी कुछ आशंकित-से थे। अगर पत्थर ने आकाश मे सूराख नहीं किया? इतना बडा शायर झूठ तो नही बोल सकता। पृथ्वीलोक की इतनी सारी जनता क्या बेबात ही शेर की इतने सालो से दाद दे रही है। अरे, शेर की जान उसकी यह सच्चाई ही तो हे जो सारी जनता को इसका कायल किए हुए है।

अनोखेलाल जी ने प्रश्नवाचक निगाह से मेरी ओर देखा मानो पूछ रहे हो, "उछालू?"

मैंने मन-ही-मन एक बार शेर को फिर दोहराया। इसमे 'तबीयत से' पर बहुत जोर था। सो मैंने आगाह किया, "पंडित जी पत्थर को 'तबीयत से' उछालना है। अगर तबीयत से न उछाला गया तो शायर आकाश मे सूराख का जिम्मेदार नहीं होगा।"

अनोखेलाल जी थोडा उलझ गए। शायद मन ही मन वह भी शेर को दोहरा रहे थे और शेर मे 'तबीयत से' के वजन की नाप-जोख कर रहे थे। सभलकर बोले "शायर ने तो सारा जोर ही तबीयत पर डाल रखा है।"

"तो क्या हुआ, आप भी सारा जोर तबीयत पर ही डाल दो।" मैंने सुझाव दिया।

दर्शक-दीर्घा से श्रीमती जी लगभग चिल्लाईं "क्यो देरी कर रहे हो? शुभ मुहूर्त निकला जा रहा है। उछालो ना!"

अनोखेलाल जी ने सशय मे डूबकर फिर प्रश्न किया, "अब मैं इस तबीयत को कहा से लाऊ?"

बात है। अरे, तबीयत से कुछ करना तो आकाश मे छेद करने से भी मुश्किल है।"

इस सारे काड मे मै अपनी दुछत्ती के शीशे के शव पर अफसोस तक नहीं कर पा रहा था। बस, एक अच्छे पडोसी की तरह अनोखेलाल जी से सहमत होने को विवश था।

भ्रष्टाचार की पाठशाला

श्वसुर साहब ने नये दामाद के घर की बदहाली देखकर मन-ही-मन अपना सिर पीट लिया। दीपावली की मिठाई देने गए थे। सोच रहे थे कि पिछले छह महीनो मे तो घर की कायापलट हो गयी होगी। दीवारो पर रग-बिरगी पुताई हो गयी होगी फर्शों पर रगडाई और अलमारियो पर शीशे चढ गए होगे। करीने से रखा नया-नवेला फर्नीचर दमक रहा होगा। लेकिन यहा तो सभी कुछ उलटा नजर आया। दीवारो से प्लास्टर और उखड गया था फर्शो का रहा-सहा दाना भी उभर आया था और अलमारिया शीशो का साथ ही छोड चुकी थीं। फर्नीचर के नाम पर गिनती के चार मूढे और एक लगडी मेज भर थी। लगा, कही कोई गलती जरूरी हो रही थी। श्वसुर साहब सोच मे डूब गए।

श्वसुर साहब ने सैकडो सम्भावित उम्मीदवारो मे से यह दामाद चुना था। मैनेजर तक की प्राइवेट नौकरी वाले को पीछे धकेलकर यह सरकारी नौकरी वाला दामाद तलाशा था। सोचा था कि छोकरी सारा जीवन सुख पाएगी। सरकारी नौकरी भी कोई साधारण नही। राज्य विद्युत् परिषद् का अवर अभियता, जिसे सभी आदर से 'जे० ई० साहब' कहते हैं। छह-छह और आठ-आठ हजार की प्रारंभिक तनख्वाह वालो को इस जे० ई० के सामने यह कहकर अस्वीकार कर दिया था, "देखते रहना सालभर मे दलिद्दर दूर कर देगा।" और यह दामाद था कि श्वसुर साहब के सारे सपनो और उम्मीदो को रौंदता हुआ आज छह महीने बाद भी अपनी बदहाली की कहानी ही सुना रहा था। निश्चित रूप से कही-न-कहीं कोई गलती जरूरी हो रही थी। श्वसुर साहब आशंकित हो उठे।

मौका ढूढकर दामाद का इटरव्यू लिया, "लगता है आजकल दफ्तर मे काम नहीं है?"

"काम तो बहुत है।"

"फिर क्या तुम्हे तुम्हारा हिस्सा नहीं मिलता?"

"कैसा हिस्सा?" दामाद जी जैसे कुछ न समझ सके थे।

"अरे भाई, कमीशन मे हिस्सा। विभाग मे कमीशन भी तो आता है।" श्वसुर साहब ने खुलासा किया।

"आप भी कैसी बाते करते हैं।" दामाद ने टाल दिया। नाजुक रिश्ते की मयादाए लाघकर श्वसुर साहब इससे आगे न बढ सके। बात आई-गई हो गई पर टीस सालती रही। आखिर बेटी के भविष्य का सवाल था।

समय देखकर बेटी को समझाया "लगता है दामाद जी अभी सरकारी नौकरी के तौर-तरीको से वाकिफ नहीं है। आजकल कोरी तनख्वाह पर कौन गुजर करता है। विभागीय कमीशन मे उनका हिस्सा तो लगना ही चाहिए। दिन-रात नये कनेक्शन लगते हैं। मुफ्त मे कनेक्शन दिए जाते है क्या?"

"मेरी तो इस बारे मे सुनते ही नहीं। छेडते ही भडक जाते है। कहते है– यह गाधी का देश है, तुम मुझे रिश्वत लेने के लिए कहती हो। मे रिश्वत खाने से जहर खाना अच्छा समझता हू।" बेटी ने उनकी विचारधारा स्पष्ट कर दी थी।

श्वसुर साहब ने भी अधिक कुरेदना ठीक नही समझा। बेटी के दाम्पत्य सबधो की सवेदनशीलता से वह यथासभव बचकर रहना चाहते थे। समझ गए कि दामाद जी पर अभी आदर्शवाद का कच्चा रग चढा है। यथाथ का बारिश जब तक नहीं होगी, धुल नही पाएगा। और जब तक यह रग नहीं उतरेगा घर की दीवारे नहीं पुतेगी। मानसून आने तक बेटी कष्ट ही उठाएगी। उन्हे कुछ करना ही चाहिए।

याद आया कि उस शहर मे उनके बचपन के एक सहपाठी भी बसते हैं। विद्युत विभाग मे ही अधिशासी अभियता हैं। हाईस्कूल मे साथ पढते थे। फिर बिछुड गए। आडे वक्त अपने ही काम आते है। सो मिलने चल दिए।

बचपन के सहपाठी ने गले से लगा लिया। उलाहने हुए। ताने हुए। चाय हुई। नाश्ता हुआ। फिर पुरानी यादे ताजा की गयीं। अधिशासी अभियता यह जानकर प्रसन्न हुए कि पुराने सहपाठी का नया दामाद उनके शहर मे विद्युत विभाग मे ही अवर अभियता है। श्वसुर जी ने अपनी दुश्चिता से अवगत कराया। विद्युत अभियता ने समस्या की गहराई को समझा नापा और दामाद जी को अपने ही खण्ड मे स्थानातरित कराने का वादा कर लिया। पुराने भद्दे रगो को धोने-पोछने की जिम्मेदारी भी ओढ ली। अनुभवी श्वसुर आश्वस्त होकर लौटे।

कौल-करार मे यह तय पाया गया था कि दामाद जी के व्यावहारिक ज्ञान की प्रोग्रेस रिपोर्ट निरतर श्वसुर जी को मिलती रहेगी। अत पहला पत्र दो महीने के अदर ही मिल गया, "कुवर जी अब मेरे विभाग मे आ गए हैं। झटके खा-खाकर पहली सीढी चढ पाए हैं। समझो, अभी नर्सरी कक्षा पास की है वह भी गिरे-पडे अको से। पर निराश न होना। ईश्वर महान है। जल्द ही सद्बुद्धि देगा।"

श्वसुर जा की भी ईश्वर मे आस्था थी और उसकी लीलाओ मे पूर्ण विश्वास। दामाद जा के पहले परीक्षाफल पर वह पाच रुपये का हनुमान जी पर प्रसाद चढा आए।

कुछ ही दिनो मे दूसरा पत्र मिला "भाषाज्ञान प्राप्त कर लिया है। अक्षर आर वाक्य भी पहचानने लगे है। समझो कि प्राइमरी शिक्षा पास कर ली हैं। होनहार विद्यार्थी के सभी लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे है। भविष्य उज्ज्वल दिखता हैं।"

श्वसुर जी ने सतोष की गहरी सास ली। भला उनका चुनाव गलत कैसे हो सकता था।

अब पत्र जल्दी-जल्दी आने लगे थे। दामाद जी ने हाईस्कूल प्रथम श्रेणी मे उत्तीण किया था। इण्टरमीडिएट मे भी अपना प्रतिशत बनाए रखा था। पर स्नातक होते-होते सभी बुलदियो को लाघते हुए असाधारण मानदण्ड स्थापित किए थे। मित्र अभियता का कथन था कि कम-से-कम 90% अक प्राप्त किए हैं और दावा था कि अब क्या भविष्य मे भी कुवर जी को कोई नही पछाड सकेगा। अब वह सब के कान काटने की योग्यता रखते है।

श्वसुर का सीना गव से फूल गया। उन्होंने सहपाठी अभियन्ता को गरमागरम धन्यवाद का पत्र लिखा और उद्यापन करके सारी कॉलोनी मे मिठाई बटवा दी। अब जाकर वह बेटी और उसके घर-परिवार की चिता से मुक्त हुए थे।

एक दिन बेटी का पत्र मिला, "आदरणीय पिता जी, इनकी पदोन्नति सहायक अभियन्ता के पद पर हो गयी है। साथ ही आपके शहर के लिए तबादला भी। ये कह रहे थे कि उस शहर मे विभागीय आवासो की कमी है। वह नहीं मिल पाएगा। अत आप एक अच्छा-सा घर ढूढ रखिएगा। किराए की चिता नहीं ह चाहे जो हो पर घर बडा और अच्छा होना चाहिए। अगले शनिवार को हम सामान सहित पहुच रहे हैं।–आपकी बेटी।"

पढकर श्वसुर जी के हर्ष का पारावार न रहा। बेटी और दामाद अपने ही शहर मे आ रहे हैं। अब आएगा असली मजा सही दामाद के चुनाव का। भागदौड कर और अपना पूरा प्रभाव दाव पर लगाकर चार कमरो और ड्राइग रूम के एक बडे-से मकान का जुगाड कर दिया। किराया ज्यादा था–अवर अभियन्ता की तनख्वाह के बराबर। पर बेटी के पत्र से पिताश्री कुछ ऐसा ही समझ पाए थे। इसलिए उन्होंने किराए की चिता नही की।

अगले शनिवार को बेटी और दामाद जी उतरे। साथ मे चार बडे-बडे ट्रक सामान से लदे थे। उस सामान के सामने यह बडा मकान भी छोटा पड गया। दामाद जी ने मुह बिचका लिया। श्वसुर जी का सीना फूलकर ढाई इच चौडा हो गया। उन्हे लगा कि अभियन्ता सहपाठी ने सचमुच हक अदा किया था।

उसकी शिक्षा-दीक्षा मे कोई कसर नही रही थी। और बडा मकान खोज देन का मन-ही-मन निश्चय करके श्वसुर जी ने फिलहाल किसी तरह सारा सामान इस छोटे पडते मकान मे ही ठूस दिया।

अब अपने ही शहर मे श्वसुर जी विद्युत सहायक अभियन्ता के श्वसुर जा कहलाने लगे। दो साल से अपना एक नया मकान बनवा रहे थे। अब जाकर तैयारी पर आया था। उसके विद्युतीकरण की अब कोई चिन्ता नही रह गया थी। सहायक अभियन्ता तो अपने घर के ही थे। जिस दिन चाहेगे बिजला आ जाएगी। सो उन्होंने निश्चित होकर मकान पूरा कराया।

फिर एक दिन बिजली लगवाने का इरादा कर श्वसुर साहब ने दामाद जी से पूछा, "बेटा, नये मकान मे कितने किलोवाट का कनेक्शन ठीक रहेगा?"

"पिता जी, पाच किलोवाट ठीक रहेगा। तीन फेस का कनेक्शन मिल जाएगा। मीटर भी तीस एम्पीअर का लग जाएगा। आप गर्मियो मे ए० सी० भी चला सकेगे।" दामाद का विनम्र उत्तर था।

श्वसुर जी का दिल बल्लियो उछल गया। प्यार से फिर पूछा, "मुझे क्या करना होगा?"

"कुछ नही, बस एक फार्म भरा जाएगा और दो फोटो लगेगे।" सहज उत्तर था। श्वसुर जी बलिहारी हो गए।

अपना सबसे नया सफारी-सूट पहनकर श्वसुर साहब दामाद के ऑफिस पहुचे। वहा स्टॉफ रूम मे ही लपक लिये गए। दामाद जी का सारा स्टॉफ वी० आई० पी० ड्यूटी पर मुस्तैदी के साथ लग गया। बडे बाबू ने उन्हे अपनी सीट पर बैठाया। चाय आयी। साथ ही एक चमचा कर्मचारी बिना कहे कोल्ड ड्रिक भी ले आया। पाच मिनट के अन्तर से श्वसुर साहब को गरम और ठडा दोनो पीने पडे। सम्मान का प्रश्न जो था। बडे बाबू ने अपने हाथ से फार्म निकाल कर भर दिया। गोद लगाकर फोटो चिपका दिए। चाहते तो वह यहा तक थे कि श्वसुर साहब के हस्ताक्षर तक कर दे, इसके लिए भी उन्हे कष्ट न देना पडे, पर उन्होंने पैन निकाल लिया था सो फार्म उनकी ओर सरकाना पडा। बडे बाबू ने मिश्री-घुले शब्दो मे बताया कि अब यह फार्म उनके साहब की आख्या सहित अधिशासी अभियता के पास अनुमति हेतु जाएगा-महज औपचारिकता पूरी करने। और फिर नया कनेक्शन लग जाएगा।

सारी कार्यवाही इतनी अभूतपूर्व और सम्मानजनक थी कि श्वसुर साहब को सरकारी समय मे व्यस्त दामाद का ध्यान भग करना उचित नही जचा। वह सीना फुलाए घर लौट आए। घर पर श्रीमती जी ने कटाक्ष किया, "उमर के साथ तुम्हारा तो पेट की बजाए सीना फूले चला जा रहा है, जी। दामाद जी क्या कोई खास निशास्ता घोटकर पिलाते है आपको।"

"मै न कहता था लाखो मे एक दामाद चुना है मैंने। आज जिदगी का मजा आ गया।" श्वसुर जी ने सीना चौडा कर दिखा दिया।

दो-चार दिन बाद जब चाय और ठडे का खुमार कुछ हल्का पडा तो श्वसुर जी फिर टहलते हुए बिजली के दफ्तर पहुचे। बडे बाबू और स्टॉफ ने फिर उन्हे सम्मान सहित लपक लिया। फिर ठडा-गरम एक साथ हुआ। फाइल की अप-टू-डेट जानकारी दी गयी जो अधिशासी अभियता के पास ओपचारिक अनुमति के लिए गयी हुई थी।

कुछ सोचकर श्वसुर साहब ने अधिशासी अभियन्ता से मिलना उचित समझा। दफ्तर मे आए हुए थे ही उनके कमरे की ओर भी हो लिये। सहायक अभियन्ता के श्वसुर साहब तशरीफ लाए है, यह जानकर अधिशासी अभियता ने तुरत उन्हे अदर बुलवा भेजा। आदर सहित कुर्सी दी। तुरत फाइल निकलवाई। जबरँदस्ती फिर चाय पिलवाई ओर दामाद जी की तारीफो के पुल बाध दिए। उनकी मुक्त प्रशसा का केद्रबिदु था दामाद जी का व्यावहारिक ज्ञान और उसके उपयोग की दक्षता। पाच किलोवाट का घरेलू लोड सेक्शन करते हुए उन्होने स्पष्ट शब्दो मे सराहा "अपनी बीस साल की सर्विस मे मैने इतना सफल और व्यावहारिक सहायक अभियता नहीं देखा, जिसने नीचे से लेकर ऊपर तक विभाग के हर व्यक्ति को बाध रखा हो। सबको खुश रखता हो। उसूलो का पक्का हो और किसी का हक न मरने देता हो।" श्वसुर जी का सीना फटने को तैयार हो गया। हवा मे तैरते हुए घर पहुचे।

फिर तो फाइल के पर लग गए। अगले ही दिन अवर अभियता ने घर जाकर 'ऐस्टीमेट' बना दिया। अनुबध के लिए सौ रुपये का स्टाम्प बडे बाबू ही खरीद लाए। टाइप भी उन्होंने दफ्तर के टाइपिस्ट से ही करा दिया। मात्र हस्ताक्षर की औपचारिकता निभाने के लिए श्वसुर साहब दफ्तर गए थे, जिस पर फिर से ठण्डा और गरम एक साथ पीना पडा था।

प्रात टहलते हुए श्वसुर जी के अन्तरग मित्र ने उलाहना दिया "सब तुम्हारे दामाद का करिश्मा है। मुझे बिजली का कनेक्शन तीन जोडी चप्पले घिसकर तीन महीने मे मिला था। विभाग के चक्कर लगाते-लगाते जोडो मे दर्द बैठ गया था। पर तुमने तो तीन दिन मे सब काम करा लिया। अब क्या बचा है अनुबन्ध के बाद तो दो घँटे मे लाइन खिच जाती है।"

श्वसुर साहब को मित्र का यह उलाहना भी बहुत सुखद लगा था। लेकिन न जाने क्यो लाइन दो घँटे मे क्या, दो दिन मे भी न खिची। श्वसुर साहब को विद्युत विभाग के चक्कर लगाना अब मनभाने लगा था। वह तीन बार मे तीन नये सफारी सूट बदलकर गए थे। इस सीजन मे एक चौथा और सिलवाया था। उसकी भी ट्राई होनी थी। सो वह चौथा सूट पहनकर विभाग को स्मरण कराने

के लिए पहुच गए। बडे बाबू ने फिर अपनी सीट छोडकर उन्हे बिठाया। पहले ठडा और फिर गरम पिलाया। कुशल क्षेम पूछा। कुछ देर मौसम पर बात का कुछ देर राजनीति पर। वापस लौटते-लौटते श्वसुर साहब के जैसे कुछ भूला-सा याद आया "अभी लाइन नहीं खिची है। अपने साहब को याद दिला देना।'

बडे बाबू विनम्रता से हाथ जोडकर झुक गए, "सर, दरअसल सही मीटर नहीं मिल रहा हे। सही मीटर आते ही लाइन चालू हो जाएगी। मुश्किल से दो घटे लगेगे।" श्वसुर साहब निश्चिन्त होकर लौट आए।

पंडित जी ने गृह-प्रवेश का मुहूर्त दो महीने बाद निकाला था। श्वसुर साहब ने निमत्रण-पत्र पर स्वागनोत्सुक के नीचे बडे प्यार से दामाद जी का नाम भी छपवाया था। फिर उसके आगे बडे गर्व से अंकित कराया था 'सहायक अभियन्ता, राज्य विद्युत परिषद'। अपने हाथ से काड बाटने दफ्तर पहुचे। सभी को आग्रहपूर्वक निमत्रित किया और लौटते हुए फिर बडे बाबू को स्मरण कराया "लाइन अभी नहीं खिची है।"

आत्मग्लानि की यातना मे डूबे भर्राए गले से उभरे स्वरो मे बडे बाबू ने आश्वासन दिया "सर, आप चिता न करे। विभाग पर इस समय दस एम एम मोटा केबिल नहीं है। केबिल आते ही लाइन खिच जाएगी।"

कॉलोनी के कई नये मकानो मे नयी लाइन खिच गइ थी। लेकिन उनके मकान के लिए पहले उपयुक्त मीटर नहीं था अब उपयुक्त केबिल। यह होता हे अपनापन। अपने ही घर मे घटिया माल थोडे ही लगा देगे। जब होगा ए-वन काम होगा। थोडी-बहुत देर-सवेर तो चलती ही रहती है।

फिर एक दिन कपडा खरीदते बडे बाबू बाजार मे मिल गए। उलाहने की तर्ज पर उन्हे टोक दिया था। बडे बाबू शर्मिदगी मे लाल हो गए। एक ही सास मे कई वायदे कर डाले।

पर बिजली की लाइन फिर भी नहीं खिची। खिसकते-खिसकते मुहूर्त का दिन भी पास आ गया। अगले ही दिन गृह-प्रवेश था। बिजली का ठेकेदार सारा काम पूरा किए बैठा था और सहायक अभियन्ता के दामाद होने के कारण आश्वस्त था। आज रात उसे फाइनल ट्रायल लेना था। उसने श्वसुर जी से पूछा "लाइन कब खिचेगी? '

पहली बार श्वसुर जी को भी थोडा-सा अटपटा लगा। बैंक मे पैसा जमा कराने जा रहे थे, प्रोग्राम बदलकर विद्युत विभाग होकर जाने की ठानी। देखते ही बडे बाबू ने कुर्सी छोड दी। सम्मान-सहित उन्हे बैठाया। कुछ रूखे स्वर मे उन्होने पूछा "तुम्हारा बढियावाला मीटर और केबिल कब आएगा? कल गृह-प्रवेश है। लाइन तो दो घटे मे जुड रही थी?"

बडे बाबू कमान की तरह झुक गए, "वह सब तो हो जाएगा सर, पर दफ्तर का इनाम तो अभी मिला ही नहीं।" कहकर भी बडे बाबू सीधे नहीं हुए। नजरे जमीन पर ही गडाए रखीं।

श्वसुर जी अवाक् रह गए, जैसे हिमालय की ऊचाइयो से पैर फिसल गया हो। दाया-बाया झाडकर कुछ सूझा तो बस इतना पूछ सके, "कितना इनाम होता है तुम्हारे दफ्तर का?"

"यही बस एक हजार रुपये।" बडे बाबू तीर छोडकर भी अभी कमान ही बने हुए थे।

श्वसुर जी ने जेब से एक हजार के नोट गिनकर बडे बाबू को थमा दिए। बडे बाबू ने विशेष आग्रहपूर्वक उन्हे चाय पिलाई। लाख इनकार करने पर भी इससे पहले उठने ही न दिया। उसके साहब के अनेक उसूलो मे से एक यह भी था कि 'अचार' चाहे जैसा भी डाल रहे हो–'सदाचार' का या 'भ्रष्टाचार' का, जब तक उसमे शिष्टाचार की चाशनी नहीं डाली जाती जायकेदार नहा उठता।

पिटे-से मन और लुटे-से कदमो से श्वसुर जी बैंक चले आए। लौटकर घर पहुचे तो बिजली की लाइन जुड चुकी थी। ठेकेदार बल्ब लगा-लगाकर टेस्ट कर रहा था। सचमुच लाइन खिचने मे दो घंटे भी न लगे थे।

श्वसुर जी सोफे पर पसर गए। दिल और दिमाग मे जैसे हारे हुए खिलाडी के कमजोर विचारो का बवडर उमड रहा था। एक झझावत उठ खडा हुआ था जो प्राय प्रथम अपराध-बोध की अनचाही पैदाइश होती है। यह उनकी आस्थाओ को नोच रहा था झकझोर रहा था।

बिजली जुडने की खुशी से प्रफुल्लित श्रीमती जी मुस्कराती हुईं पास आ खडी हुई थी "लो जी बिजली भी आ गयी। इत्ती-सी देर का काम था। दामाद जी को जब याद आ गया तभी हो गया।"

"श्वसुर जी ने एक गिलास ठडा पानी मगाकर पिया मानो बदहजमी को गले के नीचे उतार रहे हो। उबलते हुए बबूलो पर ठडा पानी डाल रहे हो। फिर सारे घटनाक्रम पर सप्रयास दुनियादारी की चादर डाल दी। चेहरे पर मोटी-सी मुस्कान खिला लाए। उत्साह से भरकर धमपत्नी से बोले, "मै तो अपने दामाद जी को अभी तक ग्रेजुएट ही समझ रहा था, वह नो डी० लिट्० निकले।"

प्रधानमंत्री की बीवी

चौधरी रौबदार सिह की कन्या गुणवती भी है और सुदर भी। इससे भी बडी बात यह है कि उसे भी इस बात की जानकारी है कि वह रूपवती है। मोहल्ले के लडको और सहेलियो के तानो ने उसे इस तथ्य का पूरा-पूरा एहसास कराया हुआ है। अत उसकी अदाओ मे लोच, पहनने-ओढने मे शृगार, चितवन मे बाकपन, बातो मे उलाहना, जरूरतो मे 'हठ' और मन मे महत्त्वाकाक्षा पैदा हो गयी है। चौधरी साहब है कि एक अच्छे और समर्थ पिता की तरह अपनी कन्या के सौंदर्य का खमियाजा उठाए चले जा रहे है।

रूपगर्विता कन्या बडी हुई तो शादी का प्रश्न खडा हुआ। चोधरी साहब ने चौधरन को सामने बैठाकर बेटी से पूछा "बता, तुझे कैसा वर चाहिए?"

बेटी पहले सकुचायी, शरमायी, फिर मा के इसरार पर मुह खोला "पापा हमारे देश मे सबसे शक्तिशाली, सबसे सामर्थ्यवान और सबसे महत्त्वपूर्ण कौन है?"

पापा को झूठ बोलने की आदत न थी, सो तुरत उत्तर निकला, "प्रधानमत्री।"

"तो फिर मैं प्रधानमत्री से ही शादी करूगी।" बेटी ने अपना निर्णय सुना दिया।

चौधरी-चौधरन ने अवाक् हो, आश्चर्य से एक-दूसरे को देखा, बेटी की नादानी पर दोनो की सिर धुन लेने की इच्छा हुई। पर बेटी अपनी थी और बाते घर की बद चहारदीवारी मे हो रही थी, इसलिए उन्होंने समझाया-"बेटी, प्रधानमत्री तो अधेड आदमी होता है। कभी-कभी बूढा भी। उसकी तो पहले से ही शादी हुई होती है। बडे-बडे बच्चे भी होते हैं। तू भला प्रधानमत्री से कैसे शादी कर सकती है?"

"क्यो, क्या प्रधानमत्री की बीवी नहीं होती?"

"होती तो है, पर पहले शादी होती है और प्रधानमत्री बाद मे बनाया जाता है।"

"तो फिर मेरी शादी ऐसे आदमी से कराइये जो बाद मे प्रधानमत्री बन जाए।" कन्या उठकर अदर चली गई।

चौधरी साहब सोच मे डूब गए। अब यह गारटी कैसे हो कि सम्भावित दूल्हा कल प्रधानमत्री ही बनेगा। लेकिन बेटा लाडला था। लाड-प्यार मे पली थी। उस पर त्रिया-हठ। सोचा कि कोशिश तो की ही जा सकती है। फिर लडकी का भाग्य। लग गए भावी प्रधानमत्री की खोज मे।

कई युवक नेताओ के इटरव्यू ले डाले। कहीं साधनो का जुगाड ठीक नजर नहीं आया तो कहीं आत्मविश्वास ही नदारद था। कही नेता के स्वाभाविक गुणो का अभाव खटका तो कही प्रधानमत्री बनने की इच्छा ही बलवती नही थी। अब कन्या को गड्ढे मे तो ढकेलना नही था सो गहन खोज जारी रही। अन्तत चौधरी साहब एक जगह जाकर अटक गए। उन्होने इस सजीले युवक नेता से पूछा था "बेटा क्या बनना चाहते हो?"

दो टूक उत्तर मिला "प्रधानमत्री।"

दूसरा प्रश्न था "अगर प्रधानमत्री न बन सके तो?"

उत्तर मे युवक नेता ने पहले आक्रोश से सभावित ससुर को घूरा था फिर प्रयत्नपूर्वक अपने को सयत करके उत्तर दिया "प्रश्न ही नहीं पैदा होता। मुझे प्रधानमत्री बनना है। मै ही इस देश का भावी प्रधानमत्री हू!"

चौधरी साहब ने पढ रखा था 'आत्मविश्वास सफलता की कुजी होती है।' अर्जुन के निशाने की तरह छोरे का एक ही लक्ष्य-भेद था। मुखमडल पर तेज था। घर मे साधन-सम्पन्नता। भावी ससुर प्रभावित हो गए। सौ प्रतिशत नहीं तो नब्बे प्रतिशत प्रधानमत्री बनने की गारटी लगती थी। अत शेष दस प्रतिशत गारटी को लडकी के भाग्य पर छोडकर चौधरी साहब ने रिश्ता तय कर दिया।

शुभ नक्षत्र मे चौधरी की कन्या की शादी देश के भावी प्रधानमत्री के साथ धूमधाम से सम्पन्न हो गई।

सुहागरात को दूल्हा-दुल्हन के लिए हीरो का हार लाया। लेकिन दुल्हन को तो कुछ और चाहिए था। उसने दूल्हे को तब तक हाथ नहीं लगाने दिया जब तक उसने सौगन्ध उठाकर एक दिन दुल्हन को 'प्रधानमत्री की बीवी' बनाने का पक्का वायदा नहीं कर लिया।

देश मे चुनाव का मौसम आ गया। नेताजी भी खडे हो गए। धर्मपत्नी ने कन्धो से कन्धा भिडा दिया। गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले और घर-घर को छान मारा। युवक कार्यकर्ता धर्मपत्नी से अधिक प्रभावित रहते थे। उसका काफिला सैकडो से कम नहीं चलता था। कार्यक्रमो मे जीवन, ताजगी और सौन्दर्य-बोध रहता था। नेताजी ने जन-भावना की नस पकड ली थी। भारी बहुमत से जीते। मालाओ से लदकर घर पहुचे तो धर्मपत्नी ने वीरोचित स्वागत किया।

रात्रि को विजेता के गले मे बाहो की माला डाल दी। नेताजी ने प्रसन्न होकर कहा–"बोल क्या मागती है?" मानो राजा दशरथ कैकेयी से वरदान मागने को कह रहे हो।

धर्मपत्नी ने सुहागरात वाली सौगन्ध दोहरा दी। वह अपने ध्येय से विचलित नही हुई थी। इधर-उधर के स्फुट आकर्षण उसे नही भटका सकने थे। चिडिया की आख मे घुसा प्रधानमत्री पद उसे तो साफ दिख रहा था। बस पति को दिखाते रहना चाहती थी।

नेताजी अब सासद हो गए थे। जिम्मेदारिया बढ गयी था। राजनीति को समझने-बूझने और खेलने की आवश्यकता पैदा हो गई थी। धर्मपत्नी ने भी अपने कर्तव्य का निर्वाह किया। भारतीय सविधान ससदीय कायप्रणाली मानव अधिकार सहित चाणक्य नीति तक घोट डाली। गोटिया भिडाने और गोटिया बैठाने की आधुनिकतम कला का स्वय भी अध्ययन किया और पति को भी हृदयगम कराया।

रोज रात्रि को सोने से पहले राजनीति की क्लास लगती थी। चर्चा होती। परिचर्चा होती। मूल्याकन होता। औकात नापी जाती। कद छोटा किया जाता। बडा किया जाता। दाव-पेच समझे जाते। समझाए जाते। गरज यह कि राजनीति की समझ पति-पत्नी के रोम-रोम मे घुस गयी।

एक दिन नेताजी ने सभी उपेक्षित, निरीह और लावारिस सह-सासदो को घर पर भोज के लिए आमत्रित कर लिया। स्वादिष्ट भोजन कराया। एकता के महत्त्व का बीजारोपण किया और एक छोटा-सा गुट तेयार कर लिया।

प्रारभ मे इस छोटे-से गुट को किसी ने नही पूछा। किसी ने घास भी नही डाली। परतु यह गुट था कि अपनी धुन मे मस्त अपनी ढपरी बजाता हुआ, रोज मिलता रहा—कभी पचतारा होटल मे, कभी रेस्तरा मे तो कभी कॉफी हाउस मे। हर मीटिग मे ताजी राजनीति पर बहस-मुबाहिसे होते। आपस मे भावी मत्रिमडल के विभागो का वितरण होता। हसी-ठट्ठा होता। किंतु प्रधानमत्री पद हमेशा हमारे नेता जी के ही पास रहता। हा, इस सबके बदले मे होटल, रेस्तरा और कॉफी हाउस का बिल प्राय हमारे प्रधानमत्री ही भरते थे। कभी-कभी गृह मत्री या वित्त मत्री भी दे दिया करते थे।

धीरे-धीरे इस गुट की यह एकता रग लायी। राजनीति के गलियारो मे हमेशा साथ रहने वाले इस गुट की चर्चा चल निकली। हमारे सासद इसके निर्विवाद नेता मान लिये गए। अब उनकी बात मे थोडा वजन आ गया। ससद के अदर उनकी टोका-टोकी भी बढ गई। समाचारपत्र भी उन्हे छापने लगे। फोटो भी छपने लगे। लेकिन बीस सासदो का एक छोटा-सा गुट उन्हे प्रधानमत्री तो नही बना सकता था। वह एक कदम आगे तो बढे थे, पर मंजिल अभी बहुत दूर थी।

इस राजनीतिक गहमागहमी मे ससदीय कार्यकाल के पाच वर्ष निकल गए। फिर से चुनाव आ गए। सासद से फिर नेता हो गए। जिम्मेदारी बढ गयी। इस

बार चुनावो मे पूव इतिहास भी था। नेतागिरी का तमगा भी। अपना निर्वाचन-क्षेत्र धर्मपत्नी के भरोसे छोडकर नेता जी सारे भारत मे उम्मीदवार खडे करने निकल पडे, छोटे-से गुट को अखिल भारतीय स्वरूप जो देना था। कहीं जातीय समीकरण देखा, कहीं धन के महत्त्व को स्वीकारा, कहीं लेन-देन की राजनीति को समझा। नेता जी जितना बन पडा, उम्मीदवार बो आए और फसल को वोटो के मानसून की दया पर छोड आए।

अब मानसून का तो कोई भरोसा नहीं कि कहा बरस जाए। किस पर बरस जाए। वह तो अपनी मर्जी का मालिक है। बहरहाल वह कुछ ऐसा बरसा कि नेताजी के गुट के बीस सदस्यो मे से आठ धुल गए। सहज बारह ही लौटकर आ सके। नयी पोध मे भी छह के ही अकुर फूटे। बाकी सब और पार्टिया बहा कर ले गयी। बीस सासदो का छोटा-सा गुट घटकर अठारह सासदो का रह गया। नेताजी के प्रधानमंत्रित्व को गहरा आघात लगा। हा, धर्मपत्नी के चुनाव-कौशल ने नेताजी की सीट सुरक्षित रखी। फिर भारी बहुमत से विजयी रहे। फिर फूलो की मालाओ से लदे। फिर बाहो के हार पडे और कौल-करार दोहरा लिये गए।

इस करारी चुनावी हार का विश्लेषण हुआ। गुट के चार सौ उम्मीदवारो मे से केवल अठारह ही निर्वाचित हो सके थे। बाकी सभी साफ हो गए थे। निष्कष निकला-चुनावी मुद्दे का अभाव। लोकतत्र मे जनता को बहकाने-फुसलाने के लिए भी एक मुद्दा चाहिए। जनता सीधे-सीधे बेवकूफ नहीं बनना चाहती। एक लालीपॉप चाहिए, फिर चाहे जो करा लो। चाहे जैसे घुस लो।

गलती यह हुई थी कि चुनाव के दौरान नेताजी ने कोई चुनावी मुद्दा पेश नहीं किया था। यह नहीं कि उनके पास मुद्दा नहीं था। बहुत ठोस मुद्दा था-'सुहागरात को पत्नी से प्रधानमत्री बनने का वायदा'। पर शायद यह असल मुद्दा पेश करने के काबिल नही था। कुआरे वोटर इसके महत्त्व को नही समझ पाते। गरीबी की सीमारेखा से नीचेवाले वोटर इसे विलासिता मानते और स्त्री वोटर शायद ईर्ष्या से विमुख हो जाते। इसलिए नेताजी ने इसे प्रचारित एव प्रसारित नही किया था और इतनी करारी हार झेल ली थी।

दूध का जला छाछ फूक-फूककर पीता है। इस बार नेताजी ने अगले चुनाव का इतजार नही किया। पहले ही दिन से चुनावी मुद्दा पकड लिया-'जिसे जो चाहिए, वही मिलेगा'। हर मच से, हर फोरम से, वे एक ही घोषणा करते-"साथियो, मेरी सरकार मे आपको जो चाहोगे, वही मिलेगा।"

एक दिन एक वरिष्ठ साथी ने समझाया-"नेताजी, अगर गलती से भी कभी प्रधानमत्री बन गए तो जनता इतना मारेगी, इतना मारेगी कि हड्डी-पसलियो का पता नही पाएगा। इन लबे-चौडे झूठे वायदो से बाज आओ।"

नेताजी आशंकित हो गए। रात्रिकालीन क्लास मे पत्नी से चचा का। सुनकर वह भी भयभीत हुई। भावी प्रधानमत्री की हड्डी-पसली वह भी जुडी रखना चाहती थी। सारी रात पत्नी को नींद न आ सकी। नेता जी का चुनावी मुद्दा अब जनता को लुभाने लगा था। जन-सभाओ मे भीड बढने लगी थी। 'गुड न दे, गुड जैसी बात तो कह दे' का सिद्धात जादुई असर कर रहा था। ऐसे ही मौके पर उस वरिष्ठ मित्र ने यह कुमत्रणा दे दी जो न उठाई जा रही थी और न धरी जा रही थी।

सुबह तक नेताजी को उपाय सूझ गया। आतकवाद के इस जमाने मे प्रधानमत्री की विशिष्ट सुरक्षा पर उन्होंने ससद मे एक प्रस्ताव डाल दिया।

बहस के दौरान नेताजी ने जोरदार शब्दो मे प्रधानमत्री की सुरक्षा व्यवस्था और अधिक मजबूत करने पर जोर दिया, चाहे फिर इस पर कितना भी खर्च क्यो न करना पडे। उनके तर्को मे पैनापन था, भाषा मे ओज और स्वर मे कडक थी। सत्ता-पक्ष और विपक्ष दोनो बराबर प्रभावित हुए थे। वर्तमान प्रधानमत्रा नेताजी की दलीलो से भौचक्के थे। उन्हे क्या पता था कि किसी सासद को उनकी सुरक्षा का इतना खयाल है। यह प्रधानमत्री भी न समझ सके थे कि उनकी सुरक्षा व्यवस्था के माध्यम से नेता जी अपनी हड्डी-पसलियो को सुरक्षित कर रहे थे। प्रस्ताव ऐसा था कि सत्ता-पक्ष भी विरोध नहीं कर सका अत ध्वनिमत से पारित हुआ।

एक ही तीर से कई शिकार हो गए। नेताजी के राजनैतिक जीवन का पहला प्रस्ताव ससद से पास हो गया। सत्ता-पक्ष को नेताजी मे अपना शुभचितक दिखने लगा। राष्ट्रीय समाचारपत्रो के मुखपष्ठ पर नेताजी का फोटो छपा। हैडलाइस मे न्यूज छपी। प्रधानमत्री ने व्यक्तिगत रूप से धन्यवाद दिया और भविष्य के लिए नेताजी की हड्डी-पसलियो का बीमा हो गया।

चुनावी मुद्दा फिर निशक-निर्बाध गति से चल निकला। अब तक नेताजी की राजनैतिक समझ-बूझ और ज्ञान मे काफी इजाफा हो चुका था। भावी प्रधानमत्री की छवि साफ-सुथरी और निर्मल होनी चाहिए। अत नेताजी किसी घपले-घोटाले के पास से भी नही गुजरते थे। पक्षपात-रहित होना चाहिए, अत वह झगडे की मध्यस्थता ही नहीं करते थे। निर्विवाद होना चाहिए, इसलिए विभिन्न अवसरो पर विरोधी विचारधाराओ को स्वीकार कर लेते थे। न्यूज मे रहना चाहिए, अत सवाददाताओ की चाटुकारिता करते रहते थे। दावते खिलाते रहते थे। साराश यह कि अपनी पत्नी के महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरतर प्रयत्नशील रहते-रहते ये पाच साल भी कट गए।

फिर चुनाव आ गया। अब नेताजी को चुनाव का अकगणित भी समझ आने लगा था। छोटे-छोटे गुटो और पार्टियो से तालमेल बैठाए बिना बहुमत मे आना

सभव नही था। उन्होने सभा बिखरे दलो को एक मच पर इकट्ठा किया। आक्डो का बारीकिया समझाया। उसके विलक्षण परिणामो से अवगत कराया और एक सूत्र मे पिरोने की रूपरेखा तयार कर दी।

कुछ दल विलय चाहते थे ओर कुछ चुनावी तालमेल। विलय मे नेताजी को अपनी धमपत्नी से किया वायदा विलय होता नजर आया। अत जबरदस्त दलीलो के बीच नेनाजी ने चुनावी तालमेल की बात मनवा ली।

चुनावी तालमेल के बीच चुनाव लडा गया। सारा पुराना चुनाव गणित गडबडा गया। बडे-बडो का कद छोटा हो गया। कोई भी दल या पार्टी पूर्ण बहुमत न प्राप्त कर सकी। सरकार बनाना एक समस्या हो गयी। छोटे-से-छोटे दल के भी नखरे हो गए। छोटे-से-छोटे सासद की भी कीमत। सत्ता की उठा-पटक प्रारम्भ हो गयी। इस सारे काड को नेताजी ने पास से देखा तो लगा कि राजनीति मे तो एक-से-एक धुरन्धर भरे पडे हैं। उनकी तो कही भी गिनती नहीं आती। उनका तो कहीं कोइ नाम लेनेवाला भी नहीं। धर्मपत्नी की चाणक्य नीति और सारी क्लासे बौनी रह गयी। नेताजी के छत्तीस सासद चुनाव जीते थे। दल डबल हो गया था। फिर भी, सारे मोलभाव मजूर थे, चाहे कोई-सा मत्रालय ले लो, पर 'प्रधानमत्री' के बारे मे कोई सुनने को भी तैयार न था। नेताजी को लगा जैसे देश के सभी नेता अपनी पत्नियो से एक दिन प्रधानमत्री बनने की सौगध खाए बैठे हो। एक बार तो उनके मन मे आया कि ससद के अगले सत्र मे प्रस्ताव रखेगे कि सविधान मे सशोधन करके प्रधानमत्री पद की सख्या एक से बढाकर कम-से-कम एक दर्जन कर दी जाए। कम-से-कम देश के बारह पति तो अपनी पत्नियो के सामने शर्मिंदा न हो। लेकिन इस नेक काम के लिए भी तो सत्ता मे आना जरूरी था-वह भी दो-तिहाई बहुमत से।

हा इस उठा-पटक मे हमारे नेताजी के हाथ भी एक छोटा-सा मत्रालय लग गया। आशा के विपरीत न धर्मपत्नी ने वीरोचित स्वागत किया और न गले मे बाहो के हार डाले। उलटा मुह फुला लिया। नाइट क्लास भी दो दिन तक स्थगित रही। नेताजी ने मनुहार की "भाग्यवान यह मत्रालय तो मैंने पूर्वाभ्यास के लिए स्वीकारा है। यह मेरी मंजिल नहीं है, रास्ता हे। साध्य नही है, साधन हे। एक अनुभव हैं। एक पडाव है। तुझे प्रधानमत्री की बीवी बनाने से पहले मे हरगिज नही मरूगा चाहे ऊपरवाले के विरुद्ध स्थगन आदेश ही क्यो न लाने पडे। आखिर प्रधानमत्री को मत्रालय के कार्यकलापो का पूर्व अनुभव भी तो होना चाहिए।"

आखिरी बात ज्ञानवान धर्मपत्नी की समझ मे आ गयी। सारे मत्रालय को विकास कार्यो से हटाकर जन-मनुहार मे झोक दिया गया। काम होने वाला हो या न हो। हो सकता हो या न हो सकता हो। अब कोई खाली हाथ नही

जाएगा। कम-से-कम सिफारिशी पत्र हर व्यक्ति को मिलेगा। मत्रालय मे 'ना' शब्द को निषेध कर दिया गया। हर बात का उत्तर 'हा' मे होने लगा। जल्द ही नेताजी की गिनती सफलतम मत्रियो मे होने लगी।

नेताजी को मत्री बने छह महीने भी न गुजरे थे कि सरकार गिर गया। कइ गुटो की जोड-तोडकर बनी सरकार का इतना चल जाना भी एक उपलब्धि ही थी। पर्यवेक्षक तो तीन ही महीने का कार्यकाल बता रहे थे। धमकिया तो पहले ही महीने से मिलने लगी थीं। कभी एक गुट नाराज हो जाता तो कभी दूसरा। इसको मनाओ तो वह असन्तुष्ट। उसको मनाओ तो यह असन्तुष्ट। प्रधानमत्री न हुए, अठारह बीवियो के शौहर हो गए। जिसे देखा कोपभवन मे पडा रहता था। अतत एक गुट निकल ही भागा और सरकार गिर गयी।

यहा भी नेताजी ने कुछ कमा ही लिया। छह महीने के कार्यकाल मे उन्होंने प्रधानमत्री को बिलकुल परेशान नहीं किया। न नाराज हुए, न धमकी दी न असतुष्ट हुए और न कोई माग रखी। बराबर प्रधानमत्री के बाए हाथ बने रहे। सत्ता के गलियारो मे नेताजी की धाक जम गयी। भरोसे के राजनीतिज्ञ कहलाए जाने लगे।

फिर जोड-तोड शुरू हो गई। नयी सरकार का गठन जो करना था। जनादेश पाच साल मे एक ही बार बहुत होता है। बार-बार जनता के सामने जाना और आदेश प्राप्त करना—कोई तुक है भला! कितनी हेठी होती है। आत्मसम्मान को कितना आघात लगता है। पाच साल तक जिनको आदेश देते रहो, उन्हीं से जाकर आदेश लो, "कहो भई, हमारा आदेश देना तुम्हे पसद आया? हम फिर से तुम्हे आदेश दे सकते है? प्रजातत्र मे कही कोई गलती जरूर है जो हिंदी फिल्मो की तरह थोडे-थोडे समय बाद नौटकी करती है। मजमा लगवाती है। रोल बदलवाती है। सासद अभी दिल्ली मे आकर जमे ही थे, जनता से पाच साल के लिए विदा लेकर आए थे। इससे पहले वापस कैसे चले जाते? फिर जनता के मूड का कुछ ठिकाना है, कब उलट जाए। कब पहचानने से इनकार कर दे। सो वे एकमत हो दिल्ली मे ही टिके रहे। सरकार गिर गयी थी, पर वे खडे रहे।

गिरतो को उठाना सासदो का परम कर्तव्य है। अत सभी जी-जान से सरकार उठाने मे लग गए। नये समीकरण बिठाए जाने लगे। टोह ली जाने लगी। खरीद-फरोख्त चालू हो गयी। नयी-नयी दुकाने खुल गयीं। कुछ पहचान बनाने के लिए सिद्धान्तो पर लटक गए और अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ ने नीतियो का पट्टा लगाकर अपनी एकता और शक्ति का प्रदर्शन किया और ओकात नपवाई। कुछ ने क्षेत्रीय एकता दर्शायी, तो कुछ ने लिग-भेद की दुहाई दी। सभी बिकाऊ थे पर खुले मे कोई नहीं बिकना चाहता था। जनता के हित

मे ही जनता से पर्दा रखे थे कि कही बुरा असर न पड जाए। सत्ता के बैडरूम मे भला बच्चो जैसी भोली-भाली जनता का क्या काम।

नेताजी की धर्मपत्नी ने उकसाया "लक्ष्य-भेद का यही सही मौका है। अब की मत चूको चौहान।" और साथ मे चाणक्य नीति समझायी, "गैरो को अपना बनाने के लिए कुछ त्याग करना होता है। और कुछ न हो तो मत्री पद ही बाट आओ।"

नेताजी सारा मंत्रिमडल बाट आए। काम नही चला तो मंत्रिमडल का विस्तार कर दिया और वह भी बाट आए। फिर भी काम नहीं चला तो एक-एक पद को दो-दो जगह सौप आए और गोपनीयता बढा दी। लेकिन वाह री राजनीति। पता चला, उनके एक प्रतिद्वद्वी ने अपना मत्रिमडल तीन-तीन बार बाटा हुआ था। फिर नेताजी की दाल भला कैसे गलती। हताश, बिस्तर मे आ लेटे। सोचने लगे, पत्नी को वचन न दिया होता तो लॉटरी की एक दुकान खोलते और नाम रखते-'सपनो की दुकान'। शर्तिया चलती।

धर्मपत्नी सिरहाने आ बैठी। उन्हे भी लग रहा था कि आधुनिक राजनीति मे चाणक्य भी फेल है। कोई धर्मघोरा ही नही रहा है। मत्री पद भी प्रलोभनहीन हो गए हैं। उसने झुझलाकर पूछा, "आखिर क्या चाहते हैं तुम्हारे साथी?" "सभी प्रधानमत्री बनना चाहते है। कैसे बनाऊ सबको प्रधानमत्री?" नेताजी क्रोधित हो उठे।

"बना सको तो बना दो। सभी अपने-अपने मन की निकाले। हमारे बाप का क्या जाता है।" धर्मपत्नी भी आगबबूला थी।

नेताजी ने मन-ही-मन अपने भावी प्रस्ताव मे सशोधन किया-एक दर्जन प्रधानमंत्रियो से भी काम नही चलेगा। 540 सीटो की लोकसभा मे कम-से-कम 540 ही प्रधानमत्री होने चाहिए। और तभी उन्हे अचूक उपाय सूझ गया। कूद-कर बिस्तर से खडे हो गए। उत्साहित होकर पत्नी के कधे झकझोर दिए और बोले, "अब मैं जा रहा हू। आज सभी को प्रधानमत्री बनाकर ही लौटूगा।"

सूझ सचमुच मौलिक थी, योजना अचूक थी-'जो चाहोगे वही मिलेगा' की तर्ज पर। नेताजी ने एक-एक करके चारो प्रमुख प्रतिद्वंद्वियो से गुप्त सपर्क साधा। सौदा हुआ। तालमेल हुआ। सूझबूझ पैदा की गई। लिखत-पढत भी हुई और घोर अविश्वास मे विश्वास के साधन खोज लिये गए। जिम्मेदारिया ली-दी गयी। गारटी और गारटर पैदा किए गए। ठोस मापदण्ड अपनाए गए। शक और शुबहा की कोई गुजाइश ही न छोडी गयी और प्रधानमत्री का शेष कार्यकाल आपस मे हिल-मिलकर बाट लिया गया।

इस घोर परिश्रम का वांछित परिणाम निकला। अथक प्रयत्न रग लाए। नेताजी के हाथ पहले छह महीने का कार्यकाल लग गया। क्योंकि उनकी पहले

प्रधानमत्री बनने की जिद थी इसलिए कार्यकाल छोटा ही मिला था। मात्र छह महीने के लिए प्रधानमंत्रित्व फिर सत्ता-परिवर्तन होना था। फिर दूसरा प्रधानमत्री निर्धारित समय के लिए। पाचो इसी क्रम मे बध गए। पाचो के सपन साकार हो उठे। असभव सभव लगने लगा। झाडी की दो चिडियो से मुट्ठी की एक भली। कम-से-कम प्रधानमत्री तो बनेगे। प्रधानमत्री तो कहलाएगे। कार्यकाल किसने देखा है। दिन किसने गिने है। पाच साल का ठेका है क्या? अरे, सत्ता-परिवर्तन के बाद भी भूतपूर्व प्रधानमत्री तो बने ही रहेगे। प्रधानमत्री मे कोइ विशेषण जुडेगा ही न, कुछ घटेगा तो नही। सो सभी राजनैतिक प्रतिद्वद्वी सतुष्ट हो गए।

लेकिन शपथ ग्रहण समारोह होते-होते गोपनीयता 'लीक' हो गइ। ये पत्रकार बधु भी बडे अतरघाती होते है—कोई काम सीधे-सीधे हो न जाए। अल्पमत की सरकार और सीधे-सीधे ढग से निर्विरोध नेता का चुनाव। पत्रकार बधुओ के नथुने फूल गए थे। घर-घर सूघा गया, नेता-नेता सूघा गया और गोपनीयता लीक कर दी गयी। पूरी नही तो कुछ अशो मे।

परिणाम गभीर हुए। विरोधी तो अटल रहे पर अपने पलट गए। अडतीस सासदो की पार्टी मुट्ठी के रेत की तरह फिसलकर बिखर गयी। एक ही उलाहना था—"ये पराए क्या अपनो से भी ज्यादा हो गए।"

नेताजी चितातुर हो चले। मुह आया ग्रास निकले जा रहा था। उन्होंने फिर ट्राई मारी। वही धोबी-पछाड दाव—"तुम भी लो।" इस बार की सौदेबाजी मे उनके छह महीने का प्रधानमत्रित्व घटकर छह दिन का रह गया। लीकेज के बहाव को रोकने मे प्रधानमंत्रित्व काल के पूरे पाच माह और तीन सप्ताह टेप बनकर चिपक गए। तो क्या हुआ? देश के प्रधानमत्री की शपथ तो उठाएगे। धर्मपत्नी को किया हुआ वायदा तो निभाएगे। भूतपूर्व प्रधानमत्री तो कहलाएगे।

सादे कितु भव्य समारोह मे नेताजी ने देश के प्रधानमत्री पद की शपथ ग्रहण की।

सबधियो और बधाइयो का ताता लग गया। धर्मपत्नी का रोम-रोम प्रफुल्लित था। वह शरमाती-सी, लजाती-सी दूर-दूर डोल रही थी, जैसे आज ही नयी-नवेली ब्याहकर आयी हो।

रात्रि को धर्मपत्नी ने विजयी प्रधानमत्री के गले मे बाहो की माला डाल दी। प्रधानमत्री ने भी सुबह तक माला नहीं उतारी।

अब मै भी कायल हो गया हू कि हर महान पुरुष के पीछे एक स्त्री होती है।

समाचारपत्र बडे नीरस लगे वेतन। उन्हे लगा कि स्वर्गवासियो के साथ दुनियेजिन षडयत्र हो रहा है उन्हे माठे मे इस कदर डुबा दिया गया है कि वे खटटे का स्वाद ही न चख सके लेकिन क्या उनके रहते यह षडयत्र सफल होना चाहिए। उनका पृथ्वी–प्रसिद्ध खोजी-पत्रकारिता आखिर किस दिन काम आएगा उन्होंने इस गोलमोल का पदाफाश करने का ठान ली

'स्वग-दनिक' की रमणीयता और साज-सज्जा ने उन्हे खास प्रभावित किया था इसका छपाकन मुद्रण और गेटअप उच्च कोटि का था इसलिए वह सवप्रथम 'स्वग-दनिक' के सम्पादकीय कार्यालय मे ही पहुचे प्रधान सपादक के सामने बैठकर सीधा प्रश्न दागा "आपका सरकुलेशन कितना है?"

प्रधान सपादक प्रकाण्ड विद्वान थे। हर भाषा के ज्ञाता बोले "छत्तीस सहस्र प्रत ''

'आप इसे डबल करना चाहेगे?'' पत्रकार आत्मा ने जैसे चामत्कारिक प्रस्ताव रखा।

प्रधान सपादक ने चश्मे के पीछे से उन्हे ऊपर से नीचे तक निहारा। फिर बडे सामान्य भाव से सतोषपूण उत्तर दिया "क्या लाभ होगा? स्वग के लिए यह सरकुलेशन पयाप्त है।"

पत्रकार बधु को लगा जसे किसी ने उनके नीचे से कुर्सी खीच ली हो। स्वगवासियो का यह परम सतोषी चरित्र उन्हे बिलकुल नही भाया था। उन्हे लगता था कि जसे स्वग-निवासियो की धमनियो मे खून की जगह सफेद पानी भरा हो जो सामरस के दजनो जामो से भी उबाल नही खाता हो लेकिन उनके पथ्वीलोक के सघषशील चरित्र मे कोइ कमी नही थी। कुर्सी मे लुढककर भी उसी पर जमे रहे "लाभ क्यो नहीं है? शुल्क ज्यादा मिलेगा। मुद्रण-व्यय वही रहेगा अधिक मुनाफा होगा।"

प्रधान सपादक जी ने सतोष का एक गहरी सास खींची "यहा समाचारपत्र निशुल्क वितरित किए जाते है। यहा लाभ-अजन का तो प्रश्न ही नहीं होता।"

पत्रकार बधु पर सपादक जी के सतोष का रहस्य खुल गया था। मुफ्तखोरी के काम मे भला कौन सिर खपाएगा।

लेकिन फिर भी वह इतनी आसानी से भला कहा हार माननेवाले थे। बोले "लेकिन सरकुलेशन बढेगा तो पत्र को प्रथम स्थान प्राप्त होगा। नाम होगा प्रसिद्धि होगी। नये मानदण्ड स्थापित होगे। पुराने रिकाड टूटेगे।"

"हमारा सरकुलेशन आज भी प्रथम स्थान पर है। फिर भी आप अपनी योजना बताए, आप हमसे क्या चाहते है?" सपादक जी को इस मतात्मा के मानदड स्थापित करने वाली बात ने कहीं छू लिया था सो वह परोक्ष मे इस नवागतुक की योजना समझने और आकने के इच्छुक हो गए थे।

खट्टा पत्रकार

एक नामी-गिरामी पत्रकार परलोकवासी हो गए। भूलोक पर जब तक उनकी आत्मा की शान्ति के लिए शान्ति-यज्ञ सम्पन्न हुआ और असख्य श्रद्धाजलिया दी गयीं तब तक यमलोक मे उनका लेखा-जोखा जाचकर यमराज ने निर्णय सुना दिया "एक माह स्वगवासी, फिर नरकवासी भव।" आधार था कि पत्रकार महोदय ने प्रारम्भिक दिनो मे सच्ची साधना की थी सत्य पर अडिग रहे थे सेवाभाव रखा था और फिर कुछ नाम कमा लेने पर अपनी स्थिति सभाले रखने के लिए जोड-तोड उठा-पटक, बहलाने-फुसलाने गिराने-उठाने के दाव-पेचो मे उलझ गए थे। अब यमराज जी से तो कुछ छिपा नहीं था। वहा तो दूध का दूध और पानी का पानी होना ही था सो उनके लिए पहले स्वर्ग और फिर नरक की व्यवस्था हो गयी।

पत्रकार बन्धु कुछ दिवस तो स्वग के वैभव मे खोये रहे। एक-एक करके सभी नृत्यागारो और सोमरस-गृहो मे चक्कर लगा आए। शुल्क का वहा कोई प्रावधान न था और स्वगवासियो के लिए कोई रोक-टोक न थी–स्वच्छन्द घूमे। गहरी छानी। फिर स्वभावानुसार मन लगाने के लिए किसी साथी पत्रकार की खोज की। ज्ञात हुआ कि सभी पत्रकार कुछ समय स्वर्ग मे बिताकर नरकवासी हो चुके थे। साथ के लिए तब तक इतजार करना होगा जब तक मृत्युलोक से किसी पत्रकार की कोइ नयी आमद नहीं होती। मन मे सोचा कि पृथ्वीलोक से उनके प्रिय मित्र दूबे जी ही आ जाते तो मजा आ जाता। पर सोच भर से तो कुछ नही होता। दूबे जी तो अपने समय पर ही आने थे।

जब स्वर्ग के वैभव-विलास से मन नहीं भरमा तो स्वर्ग की समाचार-व्यवस्था का जायजा लेने निकल पडे। वहा कुल जमा चार देनिक समाचार-पत्र निकलते थे। चारो रगमच आमोद-प्रमोद, रास-रग, नृत्यागारो और सोमरसगृहो के समाचारो और विज्ञापनो से अटे पडे थे। न कहीं बलात्कार का समाचार था न डाके का। न कहीं चोरी हुई थी न कही झगडा। खून का तो केवल रग प्रयोग किया गया था नृत्यागारो के विज्ञापनो के प्रकोष्ठो को रेखाकित करने के लिए। कोई राजनैतिक समाचार भी ढूढे से नहीं मिला। पत्रकार महोदय को सभी

समाचारपत्र बड़े नीरस लगे, वेजान। उन्हें लगा कि स्वर्गवासियों के साथ सुनियोजित षडयत्र हो रहा है, उन्हे मीठे मे इस कदर डुबो दिया गया है कि वे खट्टे का स्वाद ही न चख सकें। लेकिन क्यों? उनके रहते यह षडयत्र सफल होना चाहिए। उनकी पृथ्वी-प्रसिद्ध खोजी-पत्रकारिता आखिर किस दिन काम आएगी? उन्होंने इस गोलमोल का पर्दाफाश करने की ठान ली।

स्वर्ग-दैनिक की रमणीयता और साज-सज्जा ने उन्हें खासा प्रभावित किया था, इसका छायांकन, मुद्रण और गेटअप उच्च कोटि का था, इसलिए वह सर्वप्रथम 'स्वर्ग-दैनिक' के सम्पादकीय कार्यालय मे ही पहुचे, प्रधान सपादक के सामने बैठकर सीधा प्रश्न दागा "आपका सरकुलेशन कितना है?"

प्रधान सपादक प्रकाड विद्वान थे। हर भाषा के ज्ञाता, बोले "छत्तीस सहस्र अरब "

"आप इसे डबल करना चाहेगे?" पत्रकार आत्मा ने जैसे चामत्कारिक प्रस्ताव रखा।

प्रधान सपादक ने चश्मे के पीछे से उन्हे ऊपर से नीचे तक निहारा। फिर बडे सामान्य भाव मे सतोषपूर्ण उत्तर दिया "क्या लाभ होगा? स्वर्ग के लिए यह सरकुलेशन पर्याप्त है।"

पत्रकार बधु को लगा जैसे किसी ने उनके नीचे से कुर्सी खीच ली हो। स्वर्गवासियो का यह परम सतोषी चरित्र उन्हे बिलकुल नहीं भाया था। उन्हे लगता था कि जैसे स्वर्ग-निवासियो की धमनियो मे खून की जगह सफेद पानी भरा हो जो सोमरस के दजनो जामो से भी उबाल नही खाता हो लेकिन उनके पृथ्वीलोक के सघर्षशील चरित्र मे कोइ कमी नही थी। कुर्सी से लुढककर भी उसी पर जमे रहे "लाभ क्यो नहीं है? शुल्क ज्यादा मिलेगा। मुद्रण-व्यय वही रहेगा अधिक मुनाफा होगा।"

प्रधान सपादक जी ने सतोष का एक गहरी सास खींची "यहा समाचारपत्र निशुल्क वितरित किए जाते है। यहा लाभ-अर्जन का तो प्रश्न ही नहीं होता।"

पत्रकार बधु पर सपादक जी के सतोष का रहस्य खुल गया था। मुफ्तखोरी के काम मे भला कौन सिर खपाएगा!

लेकिन फिर भी वह इतनी आसानी से भला कहा हार माननेवाले थे! बोले "लेकिन सरकुलेशन बढेगा तो पत्र को प्रथम स्थान प्राप्त होगा। नाम होगा प्रसिद्धि होगी। नये मानदण्ड स्थापित होगे। पुराने रिकार्ड टूटेगे।"

"हमारा सरकुलेशन आज भी प्रथम स्थान पर है। फिर भी आप अपनी योजना बताए, आप हमसे क्या चाहते हैं?" सपादक जी को इस मतात्मा के मानदड स्थापित करने वाली बात ने कहीं छू लिया था सो वह परोक्ष मे इस नवागतुक की योजना समझने और आकने के इच्छुक हो गए थे।

'देखिए, मै लगभग पिछले दो सप्ताह से आपका पत्र देख रहा हू लेकिन एक भी चटपटा मसालेदार समाचार मेरी निगाहो से नहीं गुजरा। अगर आप मेरे कहने से मीठे के साथ-साथ खट्टे समाचार भी छापने लगे तो आपका पत्र ऊची छलांग भरने लगेगा। नये-नये आयाम स्थापित कर दिखाएगा।'' ब्रह्मास्त्र छोडकर पत्रकार बधु ने प्रतिक्रिया जानने के लिए सपादक की आखो मे झाका।

लेकिन सपादक जी उसी प्रकार सहज रहे। अप्रभावित। सरलता से पूछा "खटटे समाचारो से आपका क्या अभिप्राय है?"

पत्रकार महोदय को 'स्वर्ग दैनिक' के प्रधान सपादक की बुद्धि पर तरस आया जो खट्टे जायकेदार समाचारो से सर्वथा अनभिज्ञ थे। बोले "वही झगडा-फसाद मारपीट लूट-खसोट, चोरी-डकैती खून-खच्चर। लगता है आपका क्राइम रिपोटर सक्रिय नहीं है।"

सपादक जी तनिक मुसकराए। मुसकराहट मे विद्रूप भरा था। "आप अभी भूलोक को नहीं भुला पाए हैं शायद। यह स्वर्गलोक है। यहा यह सब नहीं होता तो फिर इस प्रकार के समाचार कैसे हो सकते हैं?"

पत्रकार बधु को यह दावा खोखला लगा। इतना बडा स्वर्गलोक, उसकी इतनी विराट जनसख्या और उसमे ये स्वाभाविक जीवन्त क्रियाए और प्रति-क्रियाए न हो। पथ्वीलोक पर भी बडे-बडे अधिकारी और नेतागण उनके सामने ऐसे ही खोखले दावे करते रहे थे और उन्होंने सबकी ढोल की पोल खोलकर उन्हे धूल चटा दी थी। एक साप्रदायिक दगे मे तो जिलाधिकारी अत तक यह कहता रहा था कि एक भी मौत नही हुई और उन्होंने एक ही इलाके से पूरी चार लाशे निकाल दी थीं। उन्हे इस प्रकार के खोखले दावो का पूर्वानुभव था सो अकड गए। मेज पर मुक्का मारकर बोले "आप यह कैसे कह सकते हैं कि यहा यह सब नही होता। ठीक है कि आप तक ऐसे समाचार नही आते इसलिए आप उन्हे नही छाप पाते। यह सब आपके सवाददाताओ की खामिया हैं लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि यहा पर अपराध होता ही नहीं है।"

पत्रकार उत्तेजित हो उठे थे लेकिन सपादक जी अभी भी सौम्य बने थे। उसी प्रकार मुसकराते हुए बोले "मैं सहस्र कोटि वर्षों से यहा कार्यरत हू। आपके मानक की एक भी खट्टी घटना मेरी दृष्टि मे नहीं आयी। फिर समाचार कैसे बनता? वास्तविकता यह है कि स्वर्गलोक पर जीवात्माए सतुष्ट है, इसलिए ऐसे आपराधिक दुष्कर्मो मे नहीं उलझती जिससे खट्टा समाचार बने।"

मत्युलोक के पत्रकार कुछ ढीले पडे। संदेह जनमा कि वह गलत भी हो सकते है। शायद भूलोकवासियो का यहा आकर पूर्णतया हृदय-परिवर्तन हो जाता हो। अत सभालकर दाव फेका "इसका अर्थ है कि आपके यहा क्राइम रिपोर्टर ही नहीं होगा। खोजी पत्रकारिता का नितात अभाव है।"

प्रश्न ही पैदा नहीं होता।"

"फिर आप तक भला खट्टे समाचार कैसे पहुचे? अपना छीछालेदर छपवाने कोइ स्वय चलकर तो आपके पास आएगा नही। यह तो खोजी पत्रकार का काम है कि सात पर्दों के पीछे से चटखारेदार समाचार निकाल लाए। जब क्राइम रिपोटर हा नही तो क्राइम न्यूज कहा से आएगा? आप यह काम मुझे सौंपिए और फिर देखिए अगर एक हफ्ते मे कोइ चटपटा मसालेदार समाचार न लाकर दिया तो कहना।"

सपादक जी कुछ क्षण इस अजूबे को निहारते रहे जिस पर से मत्युलोक की नासमझियत का रग अभी भी नही धुला था। फिर बडी सहजता से चुनौती स्वीकार कर ली "ठीक है, आपको एक सप्ताह नही दो सप्ताह का समय दिया जाता है। इस बीच आप कोई सच्चा, खट्टा समाचार ला सके तो मैं उसे जरूर छापूगा लेकिन यदि आप दो सप्ताह म भी असफल रहे तो फिर इस विषय पर सोचना छोड देगे और मेरा समय नष्ट नहीं करेंगे।"

खोजी पत्रकार मन-ही-मन सपादक की अडिग आस्था से हिल गए। यह स्वर्गलोक है। कहीं सचमुच ही फेल न हो जाए। इसलिए उन्होंने एक नया तीर अपने तरकश से निकाला "और आप नमकीन क्यो नही छापते? क्या आपके यहा राजनैतिक समाचार भी नहीं होता?"

"क्या मतलब?" सपादक जी एक बार फिर भौंचक्के हो गए।

"भई, नमकीन समाचार अथात् सत्ता की उठा-पटक नेताओ की रस्साकशी खींचातानी, राजकर्मचारियो के गोलमोल, अधिकारियो के घोटाले पार्टियो की नोक-झोक, दल-बदल, सरकारो का गिरना-उठना, सत्ता-परिवतन। भूलोक मे तो ऐसे नमकीन समाचारो से पत्र-पत्रिकाए अटी पडी रहती थीं और भूवासी रोज सुबह ही सुबह उन्हे चाटते थे। मैं देख रहा हू कि आपके पत्र मे इन नमकीन समाचारो का भी नितात अभाव है।" इस बार खोजी पत्रकार ने अधिक विनम्रता और आदर से अपनी बात पेश की थी। शायद वह सपादक जी के सौम्य स्वभाव से प्रभावित हुए थे या फिर शायद वह इस बात से प्रभावित थे कि सपादक जी कम-से-कम दो सप्ताह का कार्यभार उन्हे सौप चुके थे।

"देखिए, हमारे यहा लोकतत्र नहीं, राजसत्ता है। देवराज इद्र हमारे लोकपालक है। हम स्वर्गवासी उनके राजकाज मे बिलकुल दखल नही देते। सभी सतुष्ट है, आनन्दमय हैं। फिर राजसत्ता से भला क्यो उलझें?"

"यह खूब रही! अगर सब आनदमय हैं तो इसका अर्थ है कि हम यह भी न जाने कि राजसत्ता क्या कर रही है। यह भी तो सभव है कि यदि राजसत्ता को और अधिक सुचारू रूप से चलाया जाए तो स्वर्गवासियो का आनद बढ जाए। राजसत्ता को निरतर सचेत रहना चाहिए और उसको सचेत रखना जनता

ओर समाचारपत्रो का दायित्व है। लगता है यहा स्वर्ग मे सभी इतने आनदमय हो गए है कि साधारण स्वाभाविक दायित्व बोध को भी भुला बैठे है।''

"यदि आप कोई स्वर्गोपयोगी नमकीन समाचार भी लाते है तो मै उसका भी स्वागत करूगा।" सपादक जी सभवतया इस बार प्रभावित हुए थे। खोजी पत्रकार ने अपने कौशल से एक विकल्प निकाल लिया था। स्वर्ग पर यदि सचमुच कुछ खट्टा हाथ नहीं लगा तो नमकीन तो वह निकाल ही लाएगे, इसका उन्हे पूरा भरोसा था।

चुनौती उठाकर पत्रकार खोजा मटरगश्ती को निकल पडे। स्वर्ग मे भवनो पर ताले तो नहीं ही थे उनके द्वार भी खुले पडे थे। लापरवाही की यह सीमा थी कि मूल्यवान आभूषण कक्षो मे बिखरे पडे थे और उनको कोई सभालकर रखनेवाला तक न था। ऐसी असावधान पृष्ठभूमि पर चोरी-डकैती, लूटमार की सम्भावनाओ का सोच ही बेमानी था। किसी भी चोरी के लिए ताला या कम-से-कम कुडा तो होना जरूरी था। झगडे-फसाद की गुजाइश भी नजर नहीं आ रही थी क्योंकि लोगो की जिह्वा पर मिसरी घुली थी। लडना, डाटना, फटकारना तो दूर लोगबाग ऊचे स्वर मे बाते करना भी नही जानते थे। शालीनता इस हद तक गुजर गयी थी कि औपचारिकता को छूने लगी थी। जनजीवन लगता था मानो सभ्यता का नाटक खेल रहा हो। ऐसी नीरस-निर्जीव समरसता मे खटाई क्या खाक मिलेगी! खोजी पत्रकार झल्ला उठे।

पर वह भी पृथ्वीवासी रहे थे। वह भी पत्रकार! आसानी से कहा हार मानने वाले थे। इस स्वर्ग-तल पर द्रव्य का महत्त्व न भी हो पर भावना का तो होगा। राग-द्वेष अपना-पराया, तेरा-मेरा, मान-अपमान कुछ तो होगा जो अपराध या हिसा को जन्म दे सके। खट्टा समाचार पैदा कर सके। उन्हे अगारा भर चाहिए था। हवा देकर आग निकालने मे तो पूर्वाभ्यस्त थे। स्वर्ग के बाजारो मे उन्हे एक कमी और खली। चाकू-छुरे, तलवार, खुरपी, पिस्तौल, बदूक–कोई भी अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध नहीं था। बच्चो के खेलने तक के लिए पिस्तौल या बन्दूक न थी। हिसा क्या खाक जन्मेगी, जब उसका साज-सामान ही न होगा! खून-खच्चर किस से होगे? खोजी पत्रकार ने सोचा–अगर मौका मिला तो पृथ्वीलोक से पिस्तौल और बदूक के खिलौने स्वर्ग मे आयात करेंगे। यहा जमकर बिकेगे।

टोह मे बैठे पत्रकार ने देखा कि नृत्यागार मे नयी-नवेली अप्सरा के साथ नृत्य करते युवक का कधा स्पर्श कर एक भद्र पुरुष ने अप्सरा के साथ नृत्य करने का प्रस्ताव किया। युवक ने सहर्ष आज्ञा दे दी और हटकर स्वय पत्रकार के पास आ विराजे। भद्र पुरुष नृत्य करने लगे। युवक हट्टा-कट्टा था। बलिष्ठ था। आराम से भद्र पुरुष को ठोक सकता था। पर दुम दबाकर आ बैठा। पत्रकार

को बुरा लगा। उन्होंने युवक को हवा दी "यह महाशय तो कबाब मे हड्डी बन गए "

"नही मै ही नृत्य करते-करते थक गया था।" युवक का स्वर शात

"फिर भी आपके नृत्य के बीच उन्हे इस तरह नहीं अटकना चाहिए था मुझे तो बहुत बुरा लगा।" पत्रकार ने अपनी कोशिश जारी रखा।

"छोडिए भी। बताइए, क्या पिएगे? आपके लिए क्या मगाऊ?" युवक फिर भी शात था।

पत्रकार के मन मे आया कि कहे—जहर मगा दे। किस कदर ठडा दिमाग है स्वर्गवासियो का। जैसे शरीर मे ठडा पानी तैरता है पानी भी ऐसा जिसने कभी उबाल न खाने की कसम खा रखी हो। निराश और निरुत्साह पत्रकार अपने कक्ष मे वापस लौट आए। स्वर्गवासी उनकी उम्मीद पर खरे नहीं उतर रहे थे।

घूमते-फिरते दो हफ्ते के तेरह दिन निकल गए लेकिन एक भी खट्टा समाचार हाथ न लगा। पत्रकार महोदय सोचने लगे कि इस निश्चिन्त स्वर्ग पर केवल वही एक चितातुर आत्मा विराजमान है। तो क्या हुआ, जिसे कुछ खोजना होगा कुछ पाना होगा वही तो चिता करेगा। निश्चिन्त होकर वह भी स्वर्ग की भीड मे खो गया तो सपादक जी के सामने हेठी न होगी उनकी विद्रूप-भरी हसी अभी तक उसके हृदय को साल रही थी। नहीं वह हार नहीं मानेगा। वह सघर्षशील मानव रह चुका है। किसी कीमत पर घुटने नही टेकेगा।

सरेशाम वह निढाल होकर अपने कक्ष मे आकर पड गए। थकान से चूर शरीर को निद्रा ने आ घेरा।

रात्रि के दूसरे पहर आखे खुली तो पत्रकार महोदय ने कक्ष की खिडकी से देखा कि सामनेवाले कक्ष मे युवा नव दम्पति प्रेमालाप मे निमग्न थे। कामातिरेक मे न केवल एक-दूसरे से गुथे हुए थे वरन एक-दूसरे को झकझोर भी रहे थे। आलिगनबद्ध पत्नी के होठो पर कामातुर पति ने दात गडा दिए। दात का निशान पत्नी के होठो पर उभर आया था। वह सिसकिया लेती हुई पति से लिपट गई और उसके कधो पर नाखून गढा दिए। नखक्षत भी कधो पर अपनी छाप छोड गए।

"हिसा! प्यार मे हिसा!" खोजी पत्रकार के उर्वर मस्तिष्क में खट्टी खबर कौध गयी। कौन कहता है कि स्वर्ग पर हिसा नहीं होती। वह उठे। सामनेवाले कक्ष का नबर और पता नोट किया और एक गरमागरम मसालेदार चटपटी खबर खींच दी। अब वह कल सपादक जी से आख मिलाकर बात कर पाएगे।

समाचार पढकर सपादक जी भी चौंके। 'स्वर्ग पर हिसा' के शीर्षक से पत्रकार ने लिखा था कि "उक्त कक्ष मे युवा पति ने अपनी नवविवाहिता धर्म-

पत्नी को काट खाया और गुस्से मे न्वयौवना पत्नी ने अपने लम्बे और तेज नाखूनो से अपने पति को घायल कर दिया। घमासान द्वद्व हुआ। तेज सिसकियो की आवाजो से सारे मोहल्ले की नींद हराम हो गई। इस झगड का मूल कारण अभी रहस्य बना हुआ है जिसे जल्द ही पाठको के मामने लाया जाएगा।" ममाचार को 'स्वग दैनिक' के मुखपष्ठ पर छापने का आश्वासन लेकर पत्रकार बधु वापस लौट आए थे।

'स्वग दैनिक' के अगले दिन के सस्करण के मुखपष्ठ पर खोजी पत्रकार को अपना खट्टी खबर नजर नहीं आयी। फिर क्या था, पत्रकार ने दैनिक का हर पृष्ठ और हर कॉलम खगाल डाला लेकिन वह समाचार होना तो मिलता। पत्रकार के मन मे शका जागी–कहीं सपादक जो पार्टी से कुछ खा-पी तो नहीं गए? तभी वादा करके मुकर गए। आज वह सपादक जी को आडे हाथो लेगे। यह सोच-सोचकर उबलते हुए पत्र 'स्वर्ग दैनिक' के सपादकीय कार्यालय जा पहुचे।

इससे पहले कि वह उफने, सपादक जी ने एक हस्तलिखित कागज उसके सामने सरका दिया। यह उस युवा नव-दम्पति का शपथ-पत्र था। लिखा था, "दन्त-क्षत और नख-क्षत उनके दाम्पत्य परिणय की चरम अभिव्यक्ति का परिणाम था। इसका उन्होंने स्वेच्छा से विरोध नहीं किया था। उनमे परस्पर वैमनस्य नहीं है। वे सुखी एव सतुष्ट प्रेमी युगल हैं और किसी भी प्रकार के झगडे लडाई या कटुता को अस्वीकार करते हैं।"

शपथ-पत्र ने पत्रकार के उबाल पर पानी की बूदो का काम किया। परतु लावा किसी ओर तो बहना ही था, सो वैसे नहीं तो ऐसे बरस पडे "आपने यह क्या किया? छापने से पहले ही युवा दम्पति को बुला भेजा। इम तरह तो मिल ली चटपटी खबरे। अरे, आप छाप देते। पढकर नव-दम्पति अपने आप दौडे आते। फिर जरूरत होती तो स्पष्टीकरण छाप दिया जाता। पृथ्वी पर तो हम ऐसा ही करते थे। पाठक पहले समाचार के चटखारे लेता, फिर उसके स्पष्टीकरण या भूल-सुधार के।"

पत्रकार ने अपनी बरसात की प्रतिक्रिया जाननी चाही। सपादक जी यथावत गभीर थे, "तुम्हें यह जानना चाहिए यह स्वर्ग है, भूलोक नहीं, जहा लाभ-प्राप्ति के लिए लोग जान-बूझकर गलती करते हो और फिर क्षमा मागते हों। आगे से ऐसी गलती क्षम्य नहीं होगी।"

पत्रकार महोदय ने मुह लटका लिया। सोचने लगे–खट्टी खबरो का यहा कोई स्कोप नहीं है। दूध से तो पकवान बनाए जा सकते हैं लेकिन पानी से नहीं और यहा खून का पानी हुआ पडा था।

अत यदि पत्रकारिता ही करनी है तो नमकीन खबरो की ओर रुख करना होगा। यह सोचते हुए पत्रकार महोदय सपादकीय कार्यालय से बाहर निकलने

ही वाले थे कि यमदूत सशरीर उपस्थित हो गए। पत्रकार महोदय यह भूल चुके थे कि स्वर्ग-प्रवास की उनकी एक माह की अवधि आज समाप्त हो रही थी। यमदूत उन्हें व्यवस्थानुसार नरक ले जाने आए थे। स्वर्ग के समाचारपत्रों का उत्थान न कर पाने की महती कसक का भारी बोझ उठाए पत्रकार महोदय दूतों के साथ नरक की ओर प्रस्थान कर गए।

हड़ताल की हड़ताल

दफ्तर पहुचकर अनोखेलाल जी का सबमे महत्त्वपूण और नियमित कर्म होता है दैनिक अखबारो पर नजर डालना। अगर सरकारी कर्मचारी देश के ताजा समाचारो से अनभिज्ञ होगा तो नौकरी क्या खाक करेगा। इसलिए वह एक-एक करके सभी अखबार चाटते हैं और फिर सारे दफ्तर मे उन समाचारो पर साधिकार वाता करते हैं, मीमासा करते हैं, खुलासा करते है। दफ्तरवालो को भी न्यूज पढने के बजाए अनोखेलाल जी से ही सुनने मे ज्यादा रस आता है। उसमे कुछ नमक और मिच ज्यादा लगी होती है। भाषा मे उतार-चढाव होता है। कहीं सवेदना होती है तो कहीं आक्रोश होता है। कहीं स्नेह होता है तो कही उलाहना। साथ मे अनोखेलाल जी की धुरन्धर टिप्पणिया भी होती हैं। आलोचना और समालोचना भी होती हैं। पूर्व इतिहास होता है और साथ ही भविष्यवाणी भी होती है।

लेकिन उस दिन हद हो गयी। एक-एक करके अनोखेलाल जी ने सारे अखबार उलट डाले। एक-एक कालम चाट लिया। कोना-कोना झाक मारा, लेकिन हडताल का कहीं कोई समाचार न मिला। अनोखेलाल जी को समझ नहीं आ रहा था कि इस देश को क्या हो गया है। पत्रकारिता के स्तर मे गिरावट आ गइ है या फिर देश ही रसातल को जा रहा है। अनोखेलाल जी को याद नहीं आ रहा था कि पिछले दो दशको मे कोई भी ऐसा मनहूस दिन गुजरा हो जिस दिन अखबार मे हडताल का समाचार न छपा हो, चाहे फिर वह धोबियो की हडताल हो या जन-प्रतिनिधियो की चपरासियो की हो या पी॰ सी॰ एस॰ अधिकारियो की बैंक कर्मचारियो की हो या कालाबाजारियो की, व्यापारियो की हो या कर्मचारियो की। उस पर तुर्रा यह कि आज यह हडताल अपने किसी भी रूप या छवि मे नदारद थी। न कहीं अनशन था, न भूख-हडताल, न कहीं साकेतिक थी न अनिश्चितकालीन। न कहीं 'गो स्लो' था न 'वक टू रूल'। न कही बद था, न घेराव। न कही दुराग्रह था और न कहीं सत्याग्रह। गाधी जी के इस देश को यह क्या हो गया है। अनोखेलाल जी का मानसिक सतुलन डोल गया। उनका मन खराब हो उठा। देश पर सकट के

बादल दिखने लगे। उनका मन काम मे न लगा। एक बार फिर अखबार उलटे-पलटे। पर खबर होती तो मिलती।

जब मन बहुत बेचैन हुआ तो छुट्टी की अरजी लेकर अनोखेलाल जी बॉस के पास जा पहुचे।

बॉस ने अनोखेलाल जी की उपस्थिति का अभाव पा नियमित प्रश्न दागा—"क्या खबरे है, अनोखेलाल जी?"

"बहुत बुरी खबर है सर।" अनोखेलाल जी का स्वर डूबा जा रहा था।

"क्या?" बॉस का कलम चलते-चलते रुक गया।

"जी, सर, आज किसी हडताल का कोई समाचार नहीं है।"

बॉस मुसकराए। कलम फिर चल निकली। बोले—"यह तो बहुत शुभ-समाचार है, अनोखेलाल जी।"

"नहीं सर, यह देश के लिए बहुत ही अशुभ है।"

"कैसे?" बॉस ने फाइल बद करके बास्केट मे सरका दी थी।

"मुझे लग रहा है कि अब अपने देश मे अन्याय अव्यवस्था और भ्रष्टाचार से लडने की शक्ति भी चुक गयी है। आज कहीं भी हडताल न होने का अर्थ है कि अब पूरे देश ने इन बिगडे हुए हालात से समझौता कर लिया है। आशा की कोई भी किरण अब किसी भी क्षितिज पर शेष नही रह गयी है।"

"तुम तो दार्शनिक हो चले हो, अनोखेलाल जी।" बॉस ने कमर कुर्सी की पीठ से लगाकर अगडाई ली।

"मेरा मन बहुत भारी हो रहा है मै छुट्टी की दरखास्त लाया हू, सर।" अनोखेलाल जी ने अरजी बॉस के आगे कर दी।

बॉस ने अरजी स्वीकृत करते हुए कटाक्ष किया—"लो, अब तो हो गयी हडताल। जब कहीं और हडताल न हुई तो आपने ही हडताल कर दी। कोटा तो पूरा हो गया।"

पर बॉस का यह मखौल भी अनोखेलाल जी को सहला न सका। अनमना मन लिये वह घर आ गए।

श्रीमती जी अनोखेलाल जी के इस असमय आगमन से पहले चौंकी फिर हालात की जानकारी ले आश्वस्त हुईं और फिर उपयुक्त मौका समझ बिखर गयी, "बस आपका ही मन सब कुछ है हमारा तो मन ही नही है। आप जब चाहे दफ्तर से छुट्टी कर ले पर हमे सुबह-शाम चूल्हा जरूर फूकना पडेगा। कान खोलकर सुन लीजिएगा, आज घर मे खाना नहीं मिलेगा।"

अनोखेलाल जी ने कानो मे रुई नहीं डाली हुई थी। कान का मैल भी दो ही दिन पहले साफ कराया था। उन्होंने न सिर्फ सुन लिया वरन समझ लिया। आज देशभर की हडताल की गिरह उन पर और उनके घर पर ही आ पडी

ह। तभा अखबारो से हडताल नदारद थी। अनोखेलाल जी ने हथियार डाल दिए। अपने अनोखे अदाज मे बोले, "चलो यह भी ठीक ही है। आज भूख-हडताल ही रखेगे।" ओर बिस्तर पर पसर गए।

इस धोबी-पछाड से श्रीमती जी चित आयी। उनकी उद्घोषणा गलत दिशा मे बह निकला थी। 'खाना नही मिलेगा' का यह अर्थ कहा से हो गया कि भूखे रहेगे। पडोसन ने तो बताया था कि घर मे खाना न देने का अर्थ होता है शानदार रेस्तरा मे खाना। श्रामती जी को पहली बार अनोखेलाल जी की समझदारी पर काफ्त हुई। वह तुनकी "भूख-हडताल क्यो करेगे जी। कही चलकर खाएगे-पिएगे।"

अनोखेलाल जी थे कि समझकर भी नही समझना चाह रहे थे। जरा-सा समझते हा कम-से-कम सौ का पत्ता साफ हो रहा था। ऐसी भी समझ किस काम का जो सरासर नुकसान पहुचाए। अब उनकी समझ मे आ रहा था कि ससार मे नासमझ ही क्यो सबसे ज्यादा सुखी है। उन्होने बिस्तर मे अगडाई तोडते हुए करवट बदलकर आलस्य का सफल प्रदर्शन किया और घोषणा कर दी, "अब मुझसे तो उठा नहीं जा रहा है। कही चला-वला नहीं जा सकता।"

श्रीमती जी लपककर बिस्तर से ही आ लगी। यह सुनहरी मौका, यह खिलखिलाता दिन, यह बेबाक छुट्टी। न आगे कोई योजना, न पीछे कोई चिता। न इसकी खबर, न उसका अंदेशा। श्रीमती जी किसी कीमत पर इसे चूकना नही चाहती थीं अत ऐतिहासिक चौहान बन गयीं। पति के बालो मे हाथ घुमाकर मनुहार की, "देखिए जी, हमारी शादी को बाईस साल हो गए। शादी के तुरत बाद बस एक बार आप मुझे दिल्ली घुमाने ले गए थे। उसके बाद हम एक बार भी सैर-सपाटे को नहीं निकले है। आज ईश्वर ने मौका दिया है तो उसे ऐसे न गवाइए।"

अनोखेलाल जी के मन मे आया कि भूल-सुधार कर दे–मौका ईश्वर ने नहीं हडताल ने दिया है। लेकिन वह भावावेश मे कोई गलत कदम उठाने को तैयार नही थे। उनकी सुस्त इद्रिया उनको निरतर सचेत कर रही थीं कि सावधानी हटी और दुर्घटना घटी। अत वह मुख्य विषय से नहीं हटे। आधुनिक जगत का सबसे कामयाब आयुध 'अर्थशास्त्र' उठा लिया। फिर करवट बदलकर चित हो गए। बोले "बाईस साल पहले दिल्ली घूमने के लिए खर्च को दस का नोट बाबूजी ने दिया था। अब बाबूजी तो है नहीं, खर्चा कहा से आएगा?"

लेकिन वह श्रीमती भी तो अनोखेलाल जी की थीं। बाईस साल से उन्हे निभा रही थीं, झेल रही थी, भुगत रही थीं। रग-रग से वाकिफ हो चुकी थी। ऊट किस करवट बैठेगा–यह हफ्ते भर नहीं, महीने भर पहले बता सकती थी। यह सोचकर मन-ही-मन मुसकरायी कि शेर स्वय ही पिजरे की ओर बढ रहा

है। बस एक करारा धक्का और लगा तो जाल मे फसा पडा है। सावधानी से भूमिका तयार की "दस का नोट चाहिए?"

"दस का नोट तो बाइस साल पहले लगा था। अब हमारे देश ने तरक्की कर ली है कम-से-कम सौ का नोट चाहिए।"

"बाईस साल मे दस गुना। क्या कमीशन खाने का इरादा है' माना कि महगाई हुइ है पर दस गुना तो नहीं हो सकती। ज्यादा-से-ज्यादा पचास का नोट लग जाएगा। तुम्हारा इरादा बीच मे से पचास का नोट हजम करने का लग रहा है।"

"भाग्यवान, खर्चा तो तुम्हारे ही सामने होगा न। हिसाब मे भी तुम कमजोर नहीं हो, फिर नीयत पर शक क्यो करती हो? जो बचेगा लोट आएगा। घर से तो चाक चौबद निकलना चाहिए।"

श्रीमती जी ने सोचा कि ढाई सौ रुपये वक्त-बेवक्त की दवा-दारू के लिए बचाकर रखे है। इस मौके पर उनमे से ही निकाल लेने चाहिए। फिर पूरा कर देगे। इस समय मौका चूके तो गए। इन्हे बार-बार छुट्टी न मिलती है और न लेने की आदत है। बोलीं, "मैं फिलहाल उधार दे सकती हू। तनखा मिलने पर लोटाने होगे।"

श्रीमती जी के पास क्या-क्या गडा खजाना है, यह जानने की हर पति की इच्छा रहती है। अनोखेलाल जी भी सुराग पाने के लिए लालायित हो उठे। फिर श्रीमती जी से उधार लेने मे क्या शर्म। घर-गृहस्थी मे तो यह चलता ही रहता है। अत क्षणभर का सकोच भी नहीं किया। तुरत हामी भर ली।

श्रीमती जी ने सौ का पत्ता अनोखेलाल जी को थमा दिया और वक्त जरूरत के लिए शेष डेढ सौ रुपये अपनी अटी मे ठूस लिये। तैयार होकर बाईस वर्ष पुरातन दम्पति नव दम्पति की तर्ज पर घर से बाहर निकले।

अनोखेलाल जी ने रिक्शावाले को हाक लगायी। श्रीमती जी ने आखे तरेरीं "बाईस साल पहले तो आप मुझे टैक्सी मे ले गए थे।"

"मैडम, तुम्हे पता है आजकल टैक्सियो के किराए आसमान को छू रहे हैं। बाईस साल पहले की बात और थी। आज टैक्सी की तो फिर चल लिया सौ रुपये मे भी काम।"

"देखो जी, चाहे कुछ भी हो वही प्रोग्राम दोहराया जाएगा जो बाईस साल पहले हुआ था। मैंने दस के बजाए सौ का नोट दिया है। मुझे अच्छी तरह याद है तब दस रुपये मे से भी आठ आने बच गए थे। ऐसी क्या मरी महगाई दस गुने से भी ज्यादा बढ गयी। आप टैक्सी बुलाए तो।"

त्रिया-हठ के सामने भला किसी की चली है और फिर आज तो वह फाइनेसर भी थी। भला कैसे झुकतीं? टैक्सी मे यात्रा प्रारभ हुई। गतव्य पर

पहुचते ही टक्सीवाले न पंतालीस रुपये झटक लिये। झटका फाइनेसर ने खाया। श्रीम्ती जी को लगा कि गलती हो गयी है। बाईस साल के अतराल ने सचमुच टक्सी आउट ऑफ बजट कर दी है। अटी मे ठुसे हुए रुपयो ने धीरज बधाया। पर मन ही मन तय कर लिया कि लोटते हुए जिद नहीं करेगी और रिक्शा मे ही लाटने वाली बात मान जाएगी।

बाइस साल पहले अगला प्रोग्राम बाजार के गोल-गप्पे और चाट खाने का हुआ था। दुकान भा यही थी। दम्पति सामने जा खडे हुए। पहले गोल-गप्पे हुए, फिर गरमा-गरम टिकिया और फिर दही की पकौडिया गुंजिया सहित। श्रीमती जी तप्त हो गयी। चाटवाले ने हाथ पोछते हुए अडतालीस रुपये माग लिये। अनोखेलाल जी ने श्रीमती जी की ओर देखा और गिन दिए। अब सौ के नोट मे से कुल जमा सात रुपये बाकी बचे थे, जो रिक्शा से घर लौटकर जाने के लिए भी काफी न थे और बाईस वर्ष पुरातन प्रोग्राम का अभी एक बटा तीन हिस्सा भी सम्पन्न न हुआ था। अभी तो पिक्चर की मैटिनी शो होनी थी, शाम को चाय-कॉफी बाकी थी, फिर बाजार की मटरगश्ती के बाद रात्रि-भोज था तब जाकर कही घर लौटे थे बाईस साल पहले। इस बीच मे पिक्चर शो के इटरवेल मे पापकोर्न भी खरीदे थे और कोल्ड ड्रिक भी हुआ था, बाजार मे मटर गश्ती करते हुए दो मासिक पत्रिकाए भी खरीदी थी-एक फिल्मी और एक गृहोपयोगी।

यह सब शेष कार्यक्रम सात रुपल्ली मे तो समा नही सकता था सो फाइनेसर ने बडी उदारता से अटी ढीली कर दी। शेष डेढ सौ रुपये पतिदेव को थमाते हुए बोलीं, "ये डेढ सौ रुपये और थे। वक्त-बेवक्त के लिए रख लिये थे। अब तो ठीक रहेगा न। पैसा बात को या स्वाद को। पर समझ लो इसके बाद मेरे पास कानी कौडी भी नही है सारे खर्च मत कर देना।"

अनोखेलाल जी ने चेतावनी पर कम और नोटो पर ज्यादा ध्यान दिया। जब फाइनेसर ने ही अटी खोल दी तो वह क्यो मन भींचे। बालकनी के दो टिकट खरीदे और गद्देदार फर्स्ट क्लास सीटो पर पसर गए। पिक्चर हॉल एयर कडीशन था और पिक्चर अल्ट्रा मॉडर्न। हीरोइन ने हीरो को 'आई लव यू' कहने मे एक रील भी पूरी नहीं लगाई थी और 'किस' ले लिया था। अनोखेलाल जी भी मूड मे आ गए। उन्हे लगा कि उनकी उम्र बाईस वर्ष घट गयी है। चोर भावना से सरकाते-सरकाते श्रीमती जी के कधे पर हाथ रख दिया। श्रीमती जी ने हाथ झटक दिया और अधेरे मे उन्हे घूरा। अनोखेलाल जी ने पापकोर्न वाले को आवाज लगाई। एक पापकोर्न का पैकेट खरीदा और फाइनेसर को पेश कर दिया। एक ही पैकेट मे मिया-बीवी टुकुर-टुकुर टूगते रहे और खुसुर-फुसुर बतियाते रहे। एक खत्म होने पर दूसरा पैकेट ले लिया गया। लगता था श्रीमती

जी भी अब बाईस साल छोटी हो गयी थी। मध्यानर मे कोल्ड ड्रिंक हुइ और फिर टूगना चालू। सभवतया दम्पति बाइस साल पहले के लव अवकाश को तीन घटे के अतराल मे समाहित कर लेना चाहते थे।

पिक्चर हॉल से निकलकर अनोखेलाल जी फिर वास्तविकता मे लौटे। हिसाब लगया तो अब उनके पास अस्सी रुपये बाकी थे। इनमे चाय मैगजीन और डिनर–तीनो तो क्या ठीक से डिनर भी सभव न था। श्रीमान जी फाइनेंसर के समक्ष प्रश्नवाचक बन गए। अब समाधान श्रीमती जी के पास भी न रहा था। उन्होने प्रोग्राम को कट किया और समस्या से उबरने का प्रस्ताव किया "चलो, अब चाय पीकर घर चलते हैं। खाना घर पर बनाकर खायेगे। आज बहुत बदपरहेजी हो गयी, और बदपरहेजी ठीक नहीं।"

श्रीमती जी के नवीन प्रस्ताव मे भरसक यह झलक थी कि वह छक गयी है लेकिन उसकी अन्तर्निहित बेबसी को अनोखेलाल जी सूघ पा रहे थे। पैंट की जेब मे हाथ डाले अस्सी रुपये के नोटो को मसल रहे थे ओर हिसाब का जोड-तोड बैठाने की अन्तहीन कोशिश कर रहे थे–क्या सचमुच बाइस साल में महगाइ बाईस गुना से भी ज्यादा हो गयी है।

चाय की चुस्किया लगाकर रिक्शा मे बैठ दम्पति घर लोट आए। इस बार कोई जल्दी न थी, कोई हठ भी न थी, कोई गलतफहमी भी न थी, इसलिए टैक्सी से रिक्शा ही ज्यादा भली थी।

घर जाकर श्रीमती जी खाना बनाने मे जुट गयी। महगाई ने कमर हा नहीं श्रीमती जी की हडताल भी तोड दी थी और अनोखेलाल जी सोच रहे थे कि इस देश मे क्या सभी हडताले अब इसी बेबसी से टूटेगी।

घोटाला घोट डाला

आजकल समाचारो के आकर्षण का प्रथम केद्रबिदु 'घोटाला' हो गया है। इसे समाचार-पत्र जितने मनोयोग से सजाते-सवारते है पाठक उससे अधिक चाव से बाचते है चारो ओर घोटाला पकडने और छापने की होड-सी लगी है। इस होड मे देश का खुफिया तत्र है कि पिसा चला जा रहा है। वह घोटाला पकडता है तो आरोप लगता है, "अब तक कहा सो रहे थे। अब आखे खुली हैं।" और अगर नहीं पकडते तो सीधा सूली पर टाग दिया जाता है–"सारे निकम्मे लोग भरे पडे हैं। अरे, भाई-भतीजे भी कभी घोटाला पकड सकते हैं।" अब खुफिया तत्र न तो स्वय घोटाला करता है और न कोई उसे बताकर घोटाला करता है। जब उसे सूचना प्राप्त होती है तो घोटाला घटित हो चुका होता है। अब वह भला कब, कहा और कैसे घोटाला पकडे।

वास्तविकता यह है कि साधनो के अभाव मे हमारे गरीब देश का खुफिया तत्र अभी तक उस अलौकिक शक्ति से लैस नहीं हो सका है जो जन-जन मे बसती है, कण-कण मे बिखरी है और देश की 90 करोड जनता के पल-पल के कर्मों का लेखा-जोखा रखती है। खुफिया तत्र घोटाला घटित हो जाने पर ज्यादा-से-ज्यादा घोटाला करनेवालो को पकड भर सकता है, लेकिन क्योंकि वे अधिकतर उसके 'आका' निकलते है या फिर आकाओ के भी 'असली आका', इसलिए उसकी मजबूरी यह है कि उन्हे पकडकर भी छोडे रखना पडता है, ढूढ लेने पर भी ढूढते रहना पडता है।

हा, इधर देश के समाचारपत्रो की घोटालो के सबध मे जागरूकता बहुत बढ गयी है। उनकी यह जागृति इस सीमा तक पहुच चुकी है कि वे 'भूल-सुधार' कर सकते है, लेकिन घोटाले की अफवाह को दावे के साथ न छापने की भूल नही कर सकते। लगता है कि किसी ने उन सभी के कानो मे एक साथ फूक मार दी है कि पाठको को घोटाले की चटनी इतनी भाती है कि उसकी ललक मे वे पूरा रद्दी अखबार, रद्दी मे बेचने के लिए भी, पूरी कीमत देकर खरीद सकते हैं।

और शायद यह घोटाला-आकर्षण की प्रतिक्रिया ही थी कि मेरे एक परिचित सपादक पिछले दो महीनो से मुझे बराबर टरकाए जा रहे थे। हर फोन पर उनका एक ही स्नेह-मंडित जवाब होता था—'यार, आजकल बहुत व्यस्त चल रहा हू, मरने तक की भी फुरसत नहीं है कुछ दिन और रुक जाओ फिर आराम मे जमकर बेठेगे।' अब यह विवादास्पद विषय हो सकता है कि मरने के लिए फुरसत की भी जरूरत होती है या नहीं लेकिन [illegible] समाचारपत्र के वह ख्यातिप्राप्त सपादक निरतर यह वहम अपने मन मे पाले हुए थे कि वह दिन के चौबीस घटो मे कम-से-कम तीस घटे व्यस्त रहते है अत एक दिन मैने उनको उनके ही सिक्को मे तोलने की ठान ली

सीधा फोन उठाया और ब्रह्मास्त्र दाग दिया 'जनाब आपके शहर की लाइब्रेरी मे हो रहे 'घोटाले' की भी कोइ सूचना है?''

'क्या! लाइब्रेरी-घोटाला! क्या हुआ है वहा? इस समय आप कहा से बोल रहे है? मेरे ऑफिस कितनी देर तक पहुच सकते है?' सपादक जी लगभग बौखला उठे थे। विस्फोट का वाछित प्रभाव हुआ लगता था

"मेरे घर से आपके ऑफिस की दूरी बीस मिनट है और अभी मुझे चलने के लिए तैयार होने मे भी लगभग एक घटा लग जाएगा।" मेरा स्वर सयत था शायद मै मन-ही-मन सपादक जी की बौखलाहट का आनद ले रहा था। इतनी प्रत्याशित प्रतिक्रिया की मुझे सभावना नहीं थी और मुझे सचमुच घर से निकलने की तैयारी के लिए कुछ समय की दरकार थी।

"देखिए, आप कुछ जल्दी तैयार हो जाइए न! मै घोटाले के बारे मे विस्तार से सब कुछ जानना चाहता हू। आप एक घंटे मे मेरे पास पहुच रहे है।" सपादक जी के स्वर मे अधिकारमिश्रित आग्रह था।

"मै जल्द से जल्द आने की कोशिश करता हू।" मै प्रभावित हुआ था। अपने घोटाले की महत्त्वहीनता का आभास मुझे था इसलिए मै सपादक जी से बहुत अधिक नहीं खेल सकता था।

सपादक जी आश्वस्त हुए। उन्होंने मुझे चेताया "और हा आप इस घोटाले की चर्चा मुझसे मिलने से पूर्व किसी से नहीं करेगे और किसी को यह भी नहीं बताएगे कि आप मुझसे मिलने आ रहे है समझ गए न!"

"आप निश्चिन्त रहे।" कहकर मैंने चोगा रख दिया था। फिर मैंने मानसिक तनाव से मुक्ति के लिए एक अगडाई ली। सपादक जी की बौखलाहट, उत्सुकता और आग्रह मुझे कही सहला रहा था लेकिन मेरे घोटाले की 'तुच्छता' चोर बनकर मेरे मन मे सेध लगा रही थी। लेकिन अब तक तीर था कि कमान से निकल चुका था, सो उसके आघात के दायित्व को तो झेलना ही था। हा सतोष यह था कि सपादक जी मेरे मित्र थे और उन्होंने काफी अरसे से समय न देकर मुझे काफी सताया हुआ था।

सवा घंटे मे मै सपादक जी के कैबिन मे उनकी कुर्सी के सामने विराजमा था। आज उनके स्वागत मे कुछ ज्यादा ही गरमाहट थी। बोले–"यार लगता कि तुम हमसे रूठे ही रहते हो। बहुत-बहुत दिनो तक हमे याद ही नही करते आज भी बुलाने पर आए हो। है न "

और इससे पहले कि मै प्रतिवाद करू और अपना उलाहना पेश करू, मु बोलने का समय न देते हुए इटरकॉम पर आदेश प्रसारित हुआ, "मैडम, सुधाक को तुरत मेरे कैबिन मे भेजिए और तीन कोल्ड कॉफी "

मेरा ओर रुख करके चिर-परिचित मुसकान बिखेरी, "हा, तो क्या घोटाल कर डाला आपने शहर की लाइब्रेरी मे?"

मै इस विशेष स्थिति के लिए भूमिका तैयार करके कुछ कहने को मु खोलने ही वाला था कि सपादक जी फिर बोल उठे–"पर अभी जरा ठहरिए मैंने सुधाकर को बुलाया है। हमारे पत्र का बेहतरीन क्राइम रिपोर्टर है। कल मे जादू है जादू! पर बेचारा 'अनलकी' रहा। पिछले साल से एक भी नय घोटाला उसके पल्ले नही पड सका। अब बताइए, अगर 'रॉ मैटिरियल' ही हो तो कोई प्रोडक्ट क्या खाक बनाएगा! वह आ जाए तो आपका घोटाल विस्तार से सुनेगे। वह जरूरी बाते नोट भी करता चलेगा।"

सुधाकर को आने मे समय नही लगा। अगले ही क्षण वह कैबिन के अद था। सपादक जी उसे कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए कह रहे थे– "देख सुधाकर अब तुम्हे मुझसे शिकायत नहीं रहनी चाहिए। मैने जयरथ की बजा तुम्हे बुलाया है। बिलकुल ताजा और नया मामला है। मै तुम्हे जमकर फेव करना चाहता हू। अब देखना यह है कि कितना 'एक्सप्लायट' कर सकते हो तुम इस 'न्यूज' को ।"

सुधाकर कतज्ञता से सराबोर हो उठा था, "सर, आपने क्या कुछ नहीं किया है मेरे लिए, मै कभी भुला सकता हू क्या।"

सपादक जी फिर मेरी ओर मुखातिब हुए थे–"हा तो, उमग जी, सुधाकर भी आ गया है। अब हम शुरू कर सकते है।"

इतने लबे घटनाक्रम मे मै अपनी भूमिका कई बार निश्चित करके सशोधित कर चुका था। मेरे चारो ओर जो महत्त्व एकत्रित किया जा रहा था, उसके अनुरूप मेरे पास सामग्री नहीं थी। मै अपने घोटाले मे भरसक जान डालने की कोशिश कर रहा था किंतु मेरे विचार से उसका स्तर सपादक जी के कैबिन मे हसी-ठट्ठे से ऊपर उठ ही नहीं पा रहा था। अत मै कही अपराध-भावना से पीडित हो चला था। इन मानसिक हिचकोलो से सपादक जी ने ही मुझे उबारा, "और हा, सुधाकर, उमग जी का परिचय कराना तो मै भूल ही गया। अरे भई ये हैं उमग जी, मेरे अभिन्न मित्र, कुछ देर पहले इनका फोन आया

था कि नगर की लाइब्रेरी मे 'घोटाला' हो गया है। मैने तुरत इन्हे बुलवा लिया। आखिर हम किसलिए बेठे है यहा। देश नगर या समाज मे अपराध हो और हम उसका भडाफोड न करे। हमारा देश और समाज सुधरना चाहिए। आप निडर होकर सब कुछ बताइए, उमग जी हम समाज मे फैलते कोढ को आसानी से पनपने नहीं देगे "

सपादक जी ने मेरी भूमिका बिछा दी थी। अत मैंने यहीं से डोर पकडना श्रेयस्कर समझा "सपादक जी बात कोई खास नहीं है। एक छोटी-सी घटना हे जिसे इतना तूल नही दिया जा सकता।"

"जो बात आपके लिए खास नहीं हे, वह हमारे लिए खास हो सकती है समाज और देश के लिए खास हो सकती हे। आप बस विस्तार से घटना बता डालिए। उसका खास-बेखास का मूल्याकन करने के लिए तो हम बैठे है।" सुधाकर जी ने मेरी बात बीच मे ही काट दी थी। वह नोटबुक और पैन खोलकर सतर्क बैठे थे।

'अब जो होगा सो भुगता जाएगा' के मनोभाव से एक गहरी सास खीचकर मैंने घटना का विवरण दिया–"कल मै शहर की लाइब्रेरी गया था। वहा सहायक लाइब्रेरियन मिश्र जी मेरे परिचित है। उनसे दो पुस्तके मागीं जिनके उद्धरण की मुझे आवश्यकता थी। घटा लगाकर मिश्र जी ने मुझे सूचित किया कि दोना ही पुस्तके मिल नही पा रही हैं। मेरा लेख अधूरा पडा था, इसलिए मैंने मिश्र जी से आग्रह किया कि यह बता दे कि पुस्तके किन सज्जन को इश्यू की गई है तब तक मै लाइब्रेरी मे ठहरकर कुछ अनावश्यक बाच लेता हू। मिश्र जी मेरी खातिर चार घंटे लगे रहे। सारे ही रजिस्टर छान मारे। लेकिन पुस्तके होतीं तो मिलती। आकर मुझे बताया कि दोनो पुस्तके गायब हैं। न तो लाइब्रेरी मे मोजूद हैं और न किसी को इश्यू ही की गई हे। और साथ मे यह भी जोडा–'यही क्या, अनेक पुस्तके ऐसी है जो ढूढते-ढूढते थक गए पर मिल ही नही पा रही हैं।' मुझे पाच घंटे लगाकर भी खाली हाथ लोट आना पडा।" मैंने विराम पकडा और प्रतिक्रिया जानने के लिए दोनो उत्सुक श्रोताओ की ओर देखा।

कैबिन मे दो मिनट के लिए पूर्ण सन्नाटा छा गया था। धीरे-धीरे सपादक जी का सिर उनकी हथेलियो पर आ टिका था और उनका स्वर जैसे सागर के तल से निकल रहा था, "इसमे तो कोइ घोटाला नही है। इस घटना की न्यूज-वैल्यू तो जीरो है।"

"सर, घोटाला तो हे पर अभी आपकी पकड मे नहीं आ पा रहा है।" सुधाकर ने तुरत प्रतिवाद किया। वह खोजी क्राइम रिपोर्टर घटना मे डुबकी लगा चुका था। उसकी वाणी मे उत्साह था।

कुर्सी पर अपना एंगिल बदलकर बोला "सर, इस सूचना को आप जरा इस दृष्टिकोण से देखे प्रतिवर्ष नगर-महापालिका नगर की लाइब्रेरी को पुस्तके खरीदने के लिए दस लाख रुपये का अनुदान देती है लेकिन लाइब्रेरी मे पुस्तके उपलब्ध नही है क्यो? क्योंकि वे खरीदी ही नही गयी है। केवल पुस्तको के नाम रजिस्टरो पर चढा लिये गए है। यह पुस्तके न किसी सदस्य के नाम इश्यू हुई है और न ही लाइब्रेरी मे मौजूद है। अब बताइए, घोटाला हुआ कि नही?"

मै इस समय सुधाकर की पत्रकारिता से गहरा प्रभावित था। वह सच्चे नयन मे बेहतरीन क्राइम-रिपोटर लग रहे थे। उन्होने अपने तर्को से मेरे अपराध-बोध को किसी हद तक कम किया था परतु सपादक जी थे कि अभी निराशा से नहीं उबरे थे। बोल्ले "पर न्यूज-वैल्यू तो कुछ नहीं है।"

"वह भी है सर परसो मेयर साहब के लडके ने प्रधान लाइब्रेरियन के लडके के साथ नावल्टी टाकीज पर एक साथ पिक्चर देखी है। मै स्वय हॉल मे मौजूद था और चश्मदीद गवाह हू। यही वह सपर्क-सूत्र है जो लाइब्रेरी मे घोटाला करा रहा है। आखिर इतना बडा घोटाला अकेला लाइब्रेरियन तो नही कर सकता जब तक मेयर का स्पष्ट हाथ न हो तो दस लाख की रकम अकेले डकारी जा सकती है क्या!" सुधाकर जी धारा-प्रवाह मे थे। उनके ज्ञान और तर्को से मैं भौचक्का रह गया था। मै जिसे साधारण घटना समझ रहा था उसकी असाधारणता से अब मै स्वय अभिभूत हो चला था।

अंतिम शब्द सुधाकर जी ने इतना जोर देकर कहे थे कि उनको सुनकर प्रधान सवाददाता जयरथ जी भी केबिन के अदर आ गए थे। "हू, यह तो कुछ बात बनी" सपादक जी थोडे आश्वस्त हुए थे "लेकिन इसमे मेयर का हाथ कैसे सिद्ध करोगे?" कहकर सपादक जी ने जयरथ जी को कुर्सी पर बैठने का इशारा किया था और वह कुर्सी खींचकर बैठ गए थे।

जयरथ जी की उपस्थिति ने सुधाकर जी को और उत्साहित कर दिया था। "आजकल घोटालो का स्टाइल ही बदल गया है, सर। अब तो एजेन्ट सिफ फोन पर बाते करके करोडो का घोटाला कर डालते हैं। यहा तो दोनो के जवान लडके मित्रता साधे हुए हैं। इससे बडा सबूत भला और क्या चाहिए कि मैंने स्वय देखा है। जरा सोचिए, अगर कोई गोलमाल नही है तो एक मेयर के लडके की लाइब्रेरियन के लडके से दोस्ती का क्या मतलब। आप चिता न करे, मेयर साहब को इस दोस्ती की वजह समझाना भारी पड जाएगा। घोटाले मे मेयर साहब का हाथ तो सिद्ध हुआ पडा है।"

अब तक कैबिन मे तीन कोल्ड कॉफी आ गई थी। जयरथ जी न केवल कुर्सी मे भली प्रकार स्थापित हो चुके थे वरन् हालाते-हाजा से भी कुछ-कुछ बेतकल्लुफ हो चले थे लेकिन उनकी ग्रहण-शक्ति अभी कुछ और चाहती थी

इसलिए वह मौन रहे। "फिर भी न्यूज स्थानीय स्तर का हा ने हुइ?" सपादक जा फिर से प्रश्नवाचक ही बने थे। इस बार जयरथ जी का सवाददाता-मस्तिष्क चुप नहीं रह सका। आखिर उनका अपने कनिष्ठ सहयोगी के लिए भी कुछ कर्तव्य बनता था इसलिए उन्होंने डोर पकड ली। "नहीं सर, यह तो राष्ट्रीय स्तर की न्यूज है। आपको मालूम नही आजकल हमारे मेयर साहब प्रदेश के शिक्षामत्री के साथ पेगे बढा रहे हैं। पिछले शनिवार को शिक्षामत्री अपन शहर मे आए थे और मेयर साहब का आतिथ्य ग्रहण किया था। इस न्यूज को पूर्णतया गुप्त रखा गया था और प्रशासन ने इसे किसी अखबार मे नहीं छपने दिया था अगर कोई गोलमाल या घोटाला नहीं है तो इतनी गोपनीयता क्यो? बिना शिक्षामत्री को हिस्सा दिए मेयर साहब कुछ भी नहीं खा सकते। मेयर साहब के साथ तो शिक्षामत्री का नाम जरूर आएगा।"

एक के बाद एक नये रहस्योद्घाटन मे मै हक्का-बक्का हो चला था। घोटाले की यह सरचना और उसका निर्माण अब मेरे लिए अत्यत कौतूहल का विषय बनता चला जा रहा था।

"इसका अर्थ हुआ कि तुम इसे मुखपृष्ठ पर ही छापोगे?" सपादक जी ने जयरथ से सीधा प्रश्न किया। राष्ट्रीय महत्त्व की सभी सूचनाए समाचारपत्र के मुखपष्ठ पर ही छपती है। और इस पत्र के काय-विभाजन के अनुसार मुख-पष्ठ लेखन सामग्री का कार्यभार वरिष्ठ सवाददाता जयरथ के कायक्षेत्र म आता था।

मैंने देखा कि सुधाकर जी का मुह लटक गया था। उनका कायक्षेत्र समाचारपत्र का तीसरा पृष्ठ था। जयरथ जी जैसे उनके हाथ का निवाला छीने ले जा रहे थे।

"मुखपष्ठ पर और रेखांकित बद कॉलम मे सर! इसमे तो अभी कइ आकर्षक बिदु निकलेगे। शिक्षामत्री देश की राजनीति को नया ध्रुवीकरण देना चाहते हैं। उनकी योजनाओ का भी इस घोटाले से सीधा सबध बैठेगा," जयरथ उत्साहित थे।

सुधाकर जी ने सपादक की ओर देखकर टोका "पर कुल घोटाला लाखो का ही तो हे। लाखो का घोटाला हमारे जैसे प्रसिद्ध समाचारपत्र के मुखपृष्ठ पर छपे क्या यह उचित होगा?" उन्होंने इस समाचार को फिर से तीसरे पृष्ठ पर घसीटने के लिए जोर लगाया था।

पर जयरथ जी ने भी जैसे चुनौती स्वीकार कर ली था कि वह इस घोटाले को मुखपृष्ठ से हटने नहीं देगे। सपादक जा को सबोधित करते हुए बोले "सर, मेरी जानकारी मे मुख्य लाइब्रेरियन इस लाइब्रेरी मे पिछले नौ वर्षो से कायरत है। दस लाख प्रति वर्ष से नौ वर्षों मे अनुदान राशि कितनी हुइ?"

हिसाब तुरत सुधाकर जी ने लगाया "नब्बे लाख घोटाला तो फिर भी लाखों मे ही रहा न करोडो मे तो नही पहुच सका।"

जयरथ जी कुछ मायूस हुए थे फिर अचानक जैसे उन्हे कुछ सूझा। मेरी ओर मुखातिब होकर पूछा—"क्या आप बता सकते है कि नौ वष पूर्व मुख्य लाइब्रेरियन पाडे जी ने किस महाने मे इस लाइब्रेरी मे अपनी सेवाए प्रारभ की थी?"

"मै पूछकर बता सकता हू।" मेरा सक्षिप्त उत्तर था।

"तो जरा अभी मालूम करके बताए।" जयरथ जी ने टेलीफोन का चोगा मेरे हाथ मे पकडा दिया।

मैने नगर लाइब्रेरी को फोन मिलाया। अपने परिचित मिश्र जी से ही बाते की और वाछित जानकारी चाही। उन्होने बताया कि प्रमुख लाइब्रेरियन जी ने नौ वष पूव फरवरी मे इस लाइब्रेरी की सेवाए प्रारभ की थी।

सुनते ही जयरथ कुर्सी से उछल पडे—"यह घोटाला करोडो का हो गया, सर।"

"कैसे?" सपादक जी फिर असमजस मे थे।

"वैरी सिम्पल। देखिए, अनुदान राशि आर्थिक वर्ष अर्थात् 1 अप्रल से 31 मार्च के लिए मिलती हे। पाडे जी ने जनवरी मे ज्वॉइन किया था। इस प्रकार उनके कायालय मे दस अनुदान राशिया प्राप्त हुईं। दस गुणा दस लाख बराबर करोड। तो घोटाला करोडो का हो गया न।" जयरथ जी ने अपनी उक्तियो से न्यूज को पुन मुखपृष्ठ पर स्थापित कर दिया था।

मैंने आपत्ति की "करोडो का नहीं, करोड का।" कितु नक्कारखाने मे तूती की आवाज कोन सुनता है। कैबिन मे उपस्थित किसी कान ने मुझे सुनने की प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की थी। तभी इटरकॉम से मैडम ने जयरथ को सूचित किया "प्रेस सेक्शन मे गुप्ता जी दो मिनट के लिए आपसे तुरत मिलना चाह रहे है। शायद सेटिग गडबडा रही है।" अनिच्छा से जयरथ जी को महत्त्वपूर्ण वातों को बीच मे ही छोडना पडा।

जयरथ के उठते ही सुधाकर जी ने सपादक जी से शिकवा किया—"सर, आप तो इस बार मुझे फेवर करने को कह रहे थे।"

"चाह तो मै यही रहा था पर अब मै क्या कर सकता हू। तुम देख ही रहे हो कि यह घोटाला राष्ट्रीय स्तर का और करोडो का बैठ रहा है। इसे तो मुखपष्ठ पर आना ही चाहिए।" सपादक जी हालात से मजबूर लग रहे थे।

सुधाकर जी ने एक बार फिर कोशिश की "पर सर, इसका प्रारभ तो मैने किया था।"

"हा पर अत तो जयरथ ने किया है न। फिर हम अपने पत्र की पॉलिसी भी तो नहीं बदल सकते।" सपादक जी जयरथ से काफी प्रभावित थे। प्रेस

सेक्शन से जयरथ जी लौट आए थे। उनसे सपादक जी ने जसे अंतिम प्रश्न किया–"किस्तो मे छापने का इरादा है क्या?" जयरथ जी मुसकराए, "किस्तो की घोषणा नहीं करेगे सर, पर जेसे-जैसे घोटाले की परते खुलनी चला जाए" किस्ते अपने आप आती चली जायेगी।"

सारा कार्यक्रम निश्चित हो गया था। कल के समाचारपत्र के मुखपृष्ठ पर नगर की लाइब्रेरी की घटना सुर्खियो मे छपने वाली थी। प्रारभ मे मै इस घटना की तुच्छता-बोध से ग्रसित था और अब मै भडाफोड की भव्यता और विराटता से आशकित हो चला था। लेकिन तीर तब भी मेरी कमान से निकला हुआ था और अब भी। प्रजातत्र के मीडिया जगत् मे मात्र दो पुस्तको का न मिलना इतना बडा काड कर सकता है, इसका मुझे पूर्व मे लेशमात्र भी आभास न था। अत मैंने अपने बचाव के लिए सपादक जी से प्रश्न किया–"इसमे मेरा नाम तो कहा नहीं आएगा न?"

उत्तर जयरथ ने दिया, "आप निश्चित रहे, हम अपने विश्वसनीय सूत्रो का गोपनीयता को कभी भग नहीं करते।"

"पर यदि दबाव पडा या इसका विरोध हुआ तब तो आपको अपनी जानकारी का स्रोत बताना ही पडेगा।" मेरा मन अभी तक आशंकित था।

"प्रश्न ही नहीं उठता। समाचार-जगत् मे रहते-रहते हम बहुत घिस-पिट लिये है। 'जान जाए पर नाम न बताई' के सिद्धात का पालन करते हैं।"

इस तसल्ली से मै आश्वस्त नहीं हो सका था लेकिन मै अपने ही चक्रव्यूह का शिकार था सो किकर्तव्यविमूढ-सा कैबिन से उठकर चला गया था।

रात्रि को नौ बजे घटी बजी थी। मिश्र जी स्वय मेरे दरवाजे पर उपस्थित थे। देखकर मैं चौंका कि कहीं भडाफोड तो नही हो गया। मुह से निकला, "आप! इस समय!" मिश्रजी मुस्कराए, "आपको जो दो पुस्तके चाहिए थीं न वे मिल गयी है। अपने निर्धारित क्रम पर नहीं लगी थीं इसलिए परसो न मिल सकी थीं। आपको असुविधा न हो, इसलिए मैं अपने नाम इश्यू कराकर ले आया हू। आप रख लीजिए। काम करके लौटा दीजिएगा।"

मै कृतज्ञ हुआ था। अपराध-बोध ने फिर से मुझे दबोच लिया था। मिश्र जी को जल्दी से चाय पिलाकर मैने विदा किया और तुरत सपादक जी को फोन मिलाकर सूचना दी कि लाइब्रेरी मे दोनो पुस्तके मिल गयी हैं। साथ ही आग्रह किया कि अब वह कृपया करोडो रुपये की घोटाले वाली राष्ट्रीय स्तर की खबर न छापे। सुनकर सपादक जी फोन पर हसे थे, "अब यह कैसे हो सकता है? मैटर तो प्रेस मे गया। सभवतया छप भी गया होगा। और फिर आपकी ही दो पुस्तके मिली है, लाइब्रेरी मे घोटाला तो करोडो रुपयो का है। सभी पुस्तके तो नही मिली है। आप निश्चित होकर सोइए। आगे का काम

हमारा है। अभी आप इन राजनीतिज्ञो और सफेदपोशो को नही जानते। अब लाइब्रेरी मे सुधार तो हम करके रहेगे।" कहकर सपादक जी ने फोन रख दिया था

मै अचंभित था। प्रात समाचारपत्र के मुखपृष्ठ पर रगीन रेखांकित बॉक्स के चार कॉलमो मे निम्नलिखित हैडलाइन्स मे गर्मागर्म समाचार छपा था–

'शहर की लाइब्रेरी मे करोडो के घोटाले का भडाफोड।'

'घोलमाल मे मेयर और शिक्षामत्री का हाथ।'

'मुख्यमत्री ने उच्च स्तरीय जाच की घोषणा की।'

और मै था कि समाचार पढ रहा था और सिर धुन रहा था।

अक्ल बड़ी या भैंस

महानगर मे जबरदस्त मुहिम छिडा था। अचानक महानगरपालिका ने दूध की सभी डेरियो को व्यस्त नगर के बाहर स्थानातरित करने का निणय ले डाला था। अब डेरियो से निकल-निकलकर भैसे नगर के रास्तो को नहीं रोक पाएगी। उनकी रैली कारो की गति और लय मे रोडा नहीं बनेगी, उनका बेसुरा 'रभाना' महानगर के व्यस्त सुर और ताल को बेसुरा नहीं कर सकेगा।

लेकिन इसमे एक लोकतात्रिक गलती रह गई।

इस एकपक्षीय निर्णय मे भैंसो से विचार-विमर्श नहीं किया गया। उनकी राय नहीं ली गयी। उनको नोटिस भी नहीं दिया गया और उनसे आपत्तिया भी इन्वाइट नहीं की गयीं। अत इस घोर अलोकतांत्रिक तरीके पर आदोलन तो होना ही था। सो छिड गया।

भैंसाली के मैदान पर भैसो की विराट सभा आयोजित हो गया। महानगर मे मशाराम पहलवान की डेरी सबसे बडी है' एक सौ बावन भैंसे है। इनमे एक गुस्सैल भैंस भी है। बात-बात पर गुस्सा खा जाती है। हर जगह और हर बात पर सींग भिडा देती है। यह भी नहीं देखती कि सींग कहा जाकर लग रहा है। नुकसान अपना होगा या पराया। कई बार सींग दीवार मे ही घुसा दिए। घायल भी हो गयी, पर गुस्सा नहीं छोडा। पहलवान ने उसका नाम 'मरखनी भैंस' रख छोडा है। डेरी की सभी भैंसे उससे डरती है। पहलवान भी डरता है। उसने इस आदोलन के लिए चदा मागा तो पहलवान ने चुपचाप पाच सौ एक रुपये की रसीद कटा ली। बराबर के फलवाले से चदा मागा तो उसने भी तुरत दो सौ एक रुपये देकर पिड छुडाया। रोज आते-जाते उसके टोकरे में मुह मारती थी। अब कुछ तो लिहाज करेगी। इस तरह आनन-फानन मे ही मरखनी भैंस ने सबसे ज्यादा चदा इकट्ठा कर लिया था।

एक तो सबसे बडी डेरी की भैंस, दूसरा मरखनी के खिताब से अलकृत, तीसरा सबसे ज्यादा चदा अटी मे। नेता के सभी गुण विद्यमान थे मरखनी मे, इसलिए लपककर स्टेज पर चढ गयी और माईक सभाल लिया।

किसा की विरोध करने की हिम्मत न हुई। मशाराम की डेरी की भैसो ने एक साथ रभाकर स्वागत किया।

मरखनी भस ने मच से घोषणा की, "बहनो यह भाषणबाजी का मौका नहीं है। 'करो य मरो' के हालात पदा हो गए है। हम अपनी पसली निचोड-निचोडकर नगरवासियो को दूध पिलाती है और ये हमे दूध से मक्खी की तरह निकालकर बाहर फेक रहे है—वह भी घोर अलोकतांत्रिक तरीके से। यह अन्याय अब हमसे सहन नहीं होगा।"

सभी भसे एक स्वर मे रभाई। भैसाली मैदान गूज उठा। विराट सभा का अनोखा समा बध गया था। पत्रकार भी सूघते हुए आ पहुचे थे।

मरखनी भस ने भाषण आगे बढाया—"लोग हमे निरक्षर भट्टाचार्य समझते है। हमारी बराबरी काले अक्षर से करते हैं। क्यो? क्योकि हम पाठशाला मे नही पढे, कॉलेज नहीं गए। जब नगरवासियो के बच्चे पोथिया बाच रहे थे, हम उनके लिए दूध बना रही थी। उनके स्वास्थ्य की चिता कर रही थी। हम त्याग मे रहीं परमाथ मे रहा। बस इसीलिए तो नहीं लिख-पढ सकीं हम।"

"ठीक है, कि हमने संविधान नही पढा है। लेकिन उसकी आत्मा को जाना है पहचाना है। हमे पता है कि हमारे भी उतने ही अधिकार है जितने देश के किसी अन्य नागरिक के। हमारे सविधान ने सभी को समान अधिकार प्रदान किए है।"

भैंसे एक बार फिर समर्थन मे रभाई। मरखनी भैंस उत्साहित हो उठी। धाराप्रवाह फिर चल निकला—"रहा प्रदूषण का सवाल, सो मानव हमसे ज्यादा प्रदूषण फैलाता है। मै इसे आकडो से सिद्ध कर सकती हू। फिर उसे शहर से बाहर क्यो नहीं भेजा जाता? उसने बाजारो मे गलियो मे, चौराहो मे भीड बढा रखी है। शहर को गदा और दूषित कर रखा है। कायदे से उसे ही शहर से बाहर निकाल दिया जाना चाहिए था। समस्या का यही सही हल था। यही सही निदान।"

मरखनी ने थोडा रुककर चारो ओर नजर घुमाई। वह यह जानना चाहती थी कि उसके भाषण का अपेक्षित असर भी हो रहा है अथवा नही। भैसे दत्तचित्त हो उसे सुन रही थीं। भाषाण के ओज और प्रवाह से आत्मविभोर थी।

इतने विराट पैमाने पर भैंस सम्मेलन देखने के लिए मानव दर्शक भी चारो ओर जुट गए थे और इस भैंस एकता से आश्चर्यचकित थे।

समाचार मेयर साहब के पास भी पहुच गया था कि भैंस आदोलन का विगुल बज उठा है। वह अब पछता रहे थे कि क्यो न पहले ही भैंसो के एक प्रतिनिधि को सभा मे आमंत्रित कर लिया। एक भैंस को समझाना कौन बडी बात थी। जब सारे सभासद पीछे पड जाते, तर्क-वितर्क होते तो क्या एक भैंस

को भी नही सभाल पाते। न होता तो कुछ ले-देकर ही काम निपट जाता। लेकिन अब जो प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किया जा चुका था, उसे वापस लेने मे महापालिका की हेठी थी। और उधर थी मरखनी। पक्की अडियल टट्टू वह भी विराट भैस-सम्मेलन के मच पर। आदोलन का बिगुल गूजा। मेयर साहब की हालत कुछ साप-छछूदर जेसी हो रहा थी। विरोधी आदोलन का उन्हे कोई मीठा अनुभव नही था।

मरखनी ने उसी ओज से घोषणा की-"अब हमे अपने अधिकारो की खातिर सडक पर उतरना पडेगा। डेरियो मे सडने से सडको पर मरना बेहतर है बोलो-भैस एकता जिदाबाद।"

भैस समुदाय समवेत स्वर मे रभा उठा।

एक भैस ने बीच मे टोककर प्रस्ताव किया-"क्या पहले मेयर को ज्ञापन देना ठीक न होगा?" यह धनीराम की डेरी की भैस थी। वह इसे प्यार से 'होशियारी' कहते थे।

मरखनी को अच्छा नही लगा। लेकिन होशियारी के प्रस्ताव मे जान थी। महाभारत से पहले कृष्ण ने भी 'शांति संदेश' भिजवाया था। मच से इसका विरोध उचित नहीं लग रहा था। कहीं आदोलन बिखर न जाए, इसलिए मरखनी ने होशियारी के प्रस्ताव का समथन कर दिया। तय हुआ कि पहले ज्ञापन दिया जाएगा। यदि फिर भी मेयर न माना तो सडको पर आर या पार की लडाई होगी।

उधर मेयर के शिविर मे भी हडकप मचा था। उन्होंने भावी रणनीति तय करने के लिए अपने सभी चुनिदा सभासद बुला भेजे थे। भैंस-स्थानातरण का यह मूल-प्रस्ताव अक्लीचद सभासद का था। भैंस-आदोलन को इतना तूल देना उसे बिलकुल नहीं भा रहा था। क्या अब निरक्षर भट्टाचार्यो की जमात महानगरपालिका के प्रस्तावो को चुनौती देगी! क्या इतना बुरा जमाना आ गया है! क्या लोकतत्र मे एकता का अर्थ है कि कोई बुद्धिमानी का कदम ही न उठाया जाए! नगर का विकास रोक दिया जाए!

उसने जोरदार शब्दो मे भैंसो के दुराग्रह के सामने एक इच भी न झुकने का आवाहन किया। नगर-विकास की दुहाई दी। भैस एकता के विरुद्ध अक्ल के इस्तेमाल की जरूरत जतायी और भैंस-आदोलन को नेस्तनाबूद करने की कमान सभाल ली।

अक्लीचद सभासद मेयर के भरोसेमद बुद्धिजीवी राजनीतिज्ञ थे। राजनीति के आधुनिकतम दाव-पेचो के ज्ञाता और प्रणेता। बिना लाठी तोडे साप मारने की कला मे पारगत। उन्होंने समस्या मे डुबकी लगाई, उसका मथन किया और हल निकाल लिया।

सूरज डबने मे पहले-पहले मशाराम पहलवान अक्लीचद के ड्राइगरूम में ध नले हुए चिप्स के बाच रम की गहरी चुस्की लगा रहे थे। अक्लीचद उन्हे ज-जान से समझाने पर तुले हुए थे पर पहलवान की समझ थी कि कुछ पकड हा नहा पा रहा था। अक्लीचद की बाते भैस के मालिक के सिर के ऊपर से तरकर निकले जा रही थीं। रम के आठ पैग भी पहलवान की मोटी बुद्धि को अक्लाचद-सी बारीक ओर पैनी नही बना पाए थे।

यह नहीं था कि मशाराम समझ नही रहा था पर मरखनी से पगा कौन ले? अक्लाचद का क्या है। वह तो भिडवाकर घर बैठेगा। डेरी तो पहलवान को चलाना है। फिर वह भला क्यो समझे। अक्लीचद ने समझकर भी 'न समझने' का स्वाद कभी नही चखा था, जिसका आनद वह भैस-स्वामी रम की चुस्कियो के बीच डकार रहा था।

पस्त होते सभासद ने रामबाण छोडा–"क्या तुम डेरी विकास का आठ लाख का ब्याज-मुक्त लोन नहीं लेना चाहते?"

पहलवान का तीसरा नेत्र खुल गया। बुद्धि बारीक हो चली। पैनी भी। समझ भी ठीक से काम करने लगी। पहले उसने लोन की बारीकियो को समझा। मेयर की ओर से पूण आश्वासन प्राप्त किया। मरखनी से उलझने के गभीर परिणामो का खुलासा किया। और फिर कही जाकर अक्लीचद की कूटनीति को हृदयगम किया।

अक्लीचद की योजना मे धनीराम का शामिल होना भी आवश्यक था। होशियारी का भी एक महत्त्वपूर्ण रोल बनता था। सो फोन करके धनीराम को बुला भेजा गया। बुद्धि उसकी भी मोटी ही निकली–रम के दो पैग और दो लाख का लोन सिप करने के बाद ही बारीक हो सकी। बडी मुश्किल से उसका समझ के द्वार खुले और योजना उसमे समा गयी।

ड्राइग रूम से जब निकले तो तीनो के हाथ मिले हुए थे।

सुबह जब पहलवान डेरी मे दुग्ध दोह रहा था तो उसने उलाहना दिया "देख मरखनी, डेरी का नाक न कटा दीजियो। मेयर को ज्ञापन तेरा ही जाना चाहिए।"

सुनकर मरखना सोच मे पड गयी। वह जितनी ओजस्वी वक्ता थी, उतना ही लिखने-पढने मे कमजोर। दरअसल लिखने-पढने का समय उसने सींगे चलाने और बेकार की बहसे करने मे गवा दिया था। उसने सुना था कि होशियारी ज्ञापन तैयार कर रही है। जब ज्ञापन तैयार ही होशियारी करेगी तो पढा भी वही जायेगा। फिर पहलवान की डेरी की नाक कैसे बचेगी? उसने मौका चूके बगैर पैंतरा मारा–"लाला, अगर नाक बचानी है तो फिर हाथ बढाओ। एक फर्स्ट क्लास ज्ञापन तैयार कराओ अपने मेयर के लिए।"

"म कब पीछे हू। डेरी की नाक के लिए तो लाला ज्न भा दे देग ।" पहलवान ने तुरत दाव समेट लिया। मशाराम पर अक्लीचद के लोन का खुमन जो चढा था।

दोहन प्रोग्राम के तुरत बाद ज्ञापन तैयार किया जाने लगा। डेरी की सभी भैसो ने उत्सुकता से कान खडे कर लिये। पहले भारी-भरकम शब्दो से सबधन और भूमिका तैयार की गयी। सुनकर भसो की बाछे खिल गयी। भैस इतिहास मे सभवतया इससे विद्वतापूण ज्ञापन कभी न लिखा गया हो। मरखनी ने मन ही मन निश्चय किया कि इस ज्ञापन को मेयर को देने से पव कम-से-कम तीन बार जरूर पढेगी ताकि उच्चारण की शुद्धता बनी रहे। स्वामी का विद्वत्ता और लगाव से वह प्रभावित भी हुई थी और आह्लादित भी।

इसके बाद मागपत्र का नबर आया। मरखनी ने अपनी माग रखकर दी–"डेरिया शहर से बाहर स्थानातरित नहीं होगा।"

पहलवान ने मोटे-मोटे अक्षरो मे लिखा और मरखनी की ओर देखा– "और ?"

"और क्या? बस, हमारी तो एक ही माग है लाला।" मरखनी ने विस्मय से देखा।

"इतना बडा आदोलन, इतना बढिया ज्ञापन। और माग बस एक! अरे, ऐसा मौका बार-बार थोडे ही मिलता है। मागो तो जी भरकर मागो। देख लेना होशियारी के ज्ञापन मे कई मागे होगी और उसका ज्ञापन इसी बात पर बाजी मार लेगा।" मशाराम ने उकसाया। डेरी की भैसो ने रभाकर समर्थन किया।

मरखनी फिर सोचने पर मजबूर हो गयी। उसने किसी दूसरी माग पर विचार ही नही किया था। हताश उसने पहलवान से पूछा–"तुम्हीं बताओ, लाला और क्या-क्या मागा जा सकता है?" पहलवान ने सुझाया–"क्या नही मागा जा सकता। मसलन, तुम्हारे टहलने के लिए एक बडा उद्यान होना चाहिए। उसमे नहाने के लिए एक तालाब। जुगाली के लिए बढिया ताजी घास। चुहल और शरारत के लिए एक फव्वारा। और यह सब नगरपालिका के खर्चे पर, उसकी देखरेख मे होना चाहिए ।"

सुनकर डेरी की भैसो के मुह से झाग निकल आए। मरखनी के नेत्र विस्फारित हो गए–"क्या यह सब मागा जा सकता है?"

"अरे, मागा जा सकता है। यह सब मिल सकता है। तुम मागनेवाली तो बनो!" मशाराम को लगा कि अक्लीचद की कूटनीति का जादू सिर चढकर बोलने लगा है।

"तो यह सब भी मागपत्र मे जोड दो, लाला। देखते हैं मेयर कैसे नही मानता।" मरखनी ने घोषणा कर दी और अपनी साथी भैंसो को गव से निहारा।

डेरा की भैसो के नथुने गव से फूल गए थे।

तभी गुप्त सूचना मिली कि 'होशियारी' ने भी ज्ञापन के लिए अपने मालिक धनाराम से विचार-विमश किया है और इन सभी मागो के अलावा एक माग और रखा है कि यह 'उद्यान' केवल भैसो के लिए सुरक्षित रहेगा। इसमे मनुष्य का प्रवेश वर्जित होगा। सुनकर मरखनी मन ही मन होशियारी की बुद्धि की कायल हो गयी। पर वह इतनी आसानी से हारनेवाली नही थी।

उसने मशाराम को उकसाया–"लाला, कुछ और सोचो। कुछ और जोडो। अब डेरा की नाक तुम्हारे हाथ मे है।"

नकेल पकडकर पहलवान ने एक माग और जोडी–"इस उद्यान का नाम 'भैस चरागाह' होगा और इसे स्कूल के लडको और मनुष्य के बच्चो से बचाने के लिए लबे-चौडे क्षेत्र मे शहर से बाहर बनाया जायेगा।"

मरखनी लाला की कृतज्ञ हो उठी।

पर गुप्त सूचनाए थी कि आए ही चली जा रही थीं। इस बार मशाराम के एक मित्र ने फोन से खबर दी थी। धनीराम ने होशियारी का ज्ञापन कानूनी दृष्टि से भी जचवाया है कि कही मेयर कानून की आड लेकर सारे ज्ञापन को ही रद्द न कर दे। एक अलोकतांत्रिक माग सारी मागो को ही न ले डूबे और मेयर को साफ बच निकलने का मौका मिल जाए।

मरखनी चितातुर हो गयी। क्या सारे किए-धरे पर पानी फिर जाएगा? भैंसाला के मैदान पर भरी सभा मे उसने शोर मचा-मचाकर लोकतत्र की दुहाई दी था। उसको अपने आदोलन का आधार बताया था। क्या वही लोकतत्र उसके ज्ञापन की धज्जिया उडा देगा। उसने दयनीय भाव से पहलवान की ओर निहारा मानो कह रही हो–"लाला, सभालो। डेरी की नाक भी और मेरी नकेल भी।"

और पहलवान ने सचमुच नकेल सभाल ली। भरी डेरी मे गरजा–"घबराने की कोइ बात नहीं है, मरखनी। यह डेरी की इज्जत का सवाल है। हम बडे-से-बडे वकील की सलाह लेगे और देखेगे कि मेयर हमारा ज्ञापन कैसे रद्द करता है।" ज्ञापन नगर के सबसे बडे एडवोकेट कानून राय चौधरी को दिखाया गया। उन्हे एक ही माग अलोकतांत्रिक और गैरकानूनी लगी–'डेरियो को शहर से बाहर स्थानातरण न किया जाए'। इस प्रस्ताव का विरोध महानगरपालिका मे पास होने से पहले कानूनसम्मत हो सकता था, पर अब प्रस्ताव पास होकर कानून और नियम का रूप ले चुका था। अब मेयर चाहकर भी उसे नहीं बदल सकता था। उसके हाथ बधे थे। ज्यादा जोर देने पर मेयर को मजबूरन ज्ञापन को रद्द,करना पडेगा। इसलिए कानून की नेक सलाह थी कि यह पहली माग ज्ञापन से निकाल दी जाए और ज्ञापन को कानूनसम्मत बना लिया जाए।

और कानून के सामने मरखनी नतमस्तक हो गयी।

मरखनी का कानूनसम्मत ज्ञापन होशियारी से बाजा मार ले गया। आम सभा मे भैस समुदाय ने मरखनी के ज्ञापन का मसादा सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया।

सभा जुलूस के रूप मे परिवर्तित हो ज्ञापन देने निकल पडी। आगे-आगे मरखनी ज्ञापन लेकर चल रही थी। मशाराम ने गेंदे के एक मन फूलो की माला से मरखनी को लाद रखा था। उसके पीछे होशियारी थी जिसके गले मे भी धनीराम ने दो मालाए डाली थी और उसके पीछे था समस्त भैस समुदाय

मेयर साहब स्वागत मे दफ्तर से बाहर निकल आए। करतलध्वनि के बीच ओजस्वी स्वर मे मरखनी ने समस्त ज्ञापन शुद्ध उच्चारण मे पढा। सब मरखनी का लोहा मान गए। भैस समुदाय गौरवान्वित हो उठा।

महानगर पालिका के सभी कर्मचारी और सभासद मौजूद थे उन्होंने भैस समुदाय को अपने हाथो से शरबत पिलवाया। इस अभूतपूर्व स्वागत की भैसो ने कल्पना भी नहीं की थी। उनका रोम-रोम पुलकित हो रहा था। सभी बाल खडे हो गए थे।

मेयर साहब ने अपनी साथी सभासदो से विचार-विमर्श किया। ज्ञापन की सभी मागे उचित, कानूनसम्मत और लोकतांत्रिक थीं। भाषा के फेरबदल से वे मूल रूप से वही थी जिनका प्रस्ताव महानगरपालिका ने पास किया था। नकराने का कोई कारण ही न बनता था। अत उन्होंने उसी समय ज्ञापन की सभी मागो को स्वीकार करने की घोषणा कर दी।

चारो ओर खुशी की लहर दौड गयी। आदोलन की इतनी महान सफलता का आभास तो मरखनी को भी न था। वह होशियारी के गले से लिपट गयी। भैंस समुदाय की आखो मे खुशी के आसू छलक आए थे।

दूर खडा अक्लीचद मद-मद मुसकरा रहा था। मेयर ने उसकी बगल मे जाकर एहसान से उसका हाथ दबा लिया था।

देश की भैसे एक बार फिर अक्लीचद से छली गयी था।

नृत्यांगना की स्वर्ग से वापसी

एक प्रसिद्ध सिने अभिनेत्री खिडकी से कूदकर सीधी ऊपर चली गयी। एक तो बबई नगरी का नृत्यागना सिने अभिनेत्री, ऊपर से 'एक्साइज-पेड' सोमरस के खुमार से परिपूर्ण स्वर्गलोक मे सूचना आग और पानी की तरह दौड गयी। मेनका और रभा जैसी नत्यागनाओ से ऊबी स्वर्ग-आत्माए इस सिने भभिनेत्री के चारो ओर एकत्र हो गयीं। स्वर्ग मे 'बद' की-सी स्थिति पैदा हो गयी। जो था वहीं अपना प्रोग्राम स्थगित करके पथ्वी की इस नया नर्तकी को देखने निकल पडा था। दरअसल काफी अरसे मे स्वगलोक मे 'अप्सरा बदलो' आदोलन जोर पकडता जा रहा था। स्वगलोक की चिरयौवना अप्सराए इतनी पुरानी हो चली थीं कि आत्माए अब उनसे ऊबने लगी थीं। उनके हाव-भाव और कटाक्ष का स्टाइल अब चित्ताकषक नहीं रह गया था और पृथ्वीलोक के नृत्य स्टाइल और नर्तकी इपोर्ट करने की माग दिन-ब-दिन जोर पकड रही थी और ऐसे ही समय यह अजूबा कि हिदुस्तान के सिने जगत की कोई ख्यातिनामा नृत्यागना अपने पूण यौवनकाल मे स्वय कूद कर इद्रलोक चली आ रही हो। भीड तो जुटनी ही थी।

राजा इद्र का सिंहासन भी डोल गया। सब कुछ परपरा के विपरीत हो रहा था। एक जीवात्मा का स्वगलोक मे इतना अभूतपूर्व स्वागत। वह भी यह निर्णय होने से पूव कि यह जीवात्मा स्वर्गवासी रहेगी या नरकवासी। स्वर्ग का सारा विधि-विधान चौपट होने जा रहा था। उन्होंने खतरे की घटी बजा दी।

यमराज मय चित्रगुप्त के उपस्थित हुए। आदेश हुआ—"इस नृत्यागना के लेखे-जोखे पर तुरत निर्णय लिया जाए।"

"कितु उससे पहले आयी हुई जीवात्माए अभी पंक्तिबद्ध अपने निर्णय की प्रतीक्षा मे है। इस नत्यागना का नबर आने मे अभी कुछ विलब होगा।" चित्रगुप्त ने नियमानुसार प्रतिवाद किया।

"कोई विलब नही। यह 'इमरजेसी' है। इस नर्तकी पर तुरत निर्णय लो। चित्रगुप्त आजकल तुम बहुत सुस्त होते जा रहे हो।" हिलते सिहासन से बौखलाए इद्रराज ने पुन व्यवस्था दी।

चित्रगुप्त एव दडाधिकारी अपने काम मे जुट गए।

उधर भूलोक से स्थानातरित होकर सिने अभिनेत्रा ने जो आखे खोलीं तो अपने को दढियलो जटाधारियो, तिलकधारियो वल्कल एव गेहुए वस्त्रधारियो की भीड से धिरा पाया। सिने तारिका को लगा कि वह भ्रम से किसी पौराणिक फिल्म के सेट पर आ गयी है। वह अभी तक कूद लगाते समय की आधुनिकतम डास-ड्रेस से सुसज्जित थी, जो बैकुठवासी भीड के लिए अत्यत कौतूहल का विषय थी।

"लगता है भूलोक मे काफी तरक्की हुई है।" भीड मे से एक मोक्ष-प्राप्त जटाधारी सन्यासी बोले।

"इस लोक के द्वार तो इस तरह से सील कर दिए है कि नया हवा का झोका तक यहा नही आ पाता।" दूसरे दढियल ने शिकवा किया।

"मै तो अब पछता रहा हू कि मैंने इतनी लबी तपस्या क्यो की।" यह महानुभाव पूर्ण मोक्ष प्राप्त कर चुके थे।

"आप लोग अपने 'डायलॉग ग्रीनरूम' मे जाकर क्यो नहीं याद करते।" कहकर नृत्यागना ने मादक अगडाई तोडी। भूलोक के सोमरस के पाच पैग का प्रभाव इस समय पराकाष्ठा पर था।

"वाह-वाह! क्या बात है।" भीड के मुह से बरबस निकल पडा था, "मेनका, रभा और उर्वशी मे यह बात कहा!"

"आउटडेटेड हो गयी हैं स्वर्ग की सब अप्सराए।"

"इन्हे अब रिटायर कर देना चाहिए।" भीड थी कि जिसके मुह में जो आ रहा था, बके जा रहा था।

सूचना नृत्यागार मे भी पहुच चुकी थी। उत्सुकता सभी विशिष्ट नृत्यागनाओं को भीड मे खींच लायी थी। रभा ने तो अपना निर्धारित नृत्य-कार्यक्रम ही स्थगित कर दिया था। न भी करती तो और क्या करती। सभी दर्शक पहले ही भीड मे जा चुके थे। अप्सराओ के लिए भूलोक के इस प्रतिद्वद्वी को देखना-समझना अत्यत आवश्यक था जिसने उनके अमर एव अक्षत एकाधिकार को चुनौती दे डाली थी।

क्रम-नियम भग करके चित्रगुप्त ने अब तक सिने-अभिनेत्री का कर्म-लेखा बाच लिया था। वैसे भी बाईस साल का लेखा बाचने मे अधिक समय नहीं लगना था। दडाधिकारी को निर्णय देने मे लेशमात्र भी विलब या सकोच नहीं हुआ-"नरकवासी भव।"

लेकिन इस निर्णय से स्वर्गलोक मे भूचाल आ गया। ऋषि-मुनियो ने इसे दुराग्रह कहा। मोक्षप्राप्त यूनियन ने तो प्रतिवेदन याचिका दायर कर दी। विशेषाधिकार से सुनवाई भी इद्रसभा में तुरत ही की गयी। अपनी तरह का यह

पहला मुकदमा था जिसमे स्वर्गलोक का जनमत विधानसम्मत निर्णय के भूलोक की जीवात्मा को नरक भेजने के स्थान पर अपने बीच स्वर्ग मे । कराना चाहता था।

सभा मे चित्रगुप्त ने न्यायाधिकारी का पक्ष प्रस्तुत किया–"इस नत्याग भूलोक मे कोई ऐसा पुण्य कर्म नही किया, जिससे उसे एक पल भी स्व रखा जा सके।"

प्रत्यावेदक की ओर से महर्षि विश्वामित्र ने कमान सभाली थी, "क्यो, उसने भूलोक की जनता को रिझाया या लुभाया नही?"

"रिझाना और लुभाना हमारे विधान मे पुण्य कर्म नही है, पाप क ऋषिवर।"

"यहा अप्सराए दिन-रात स्वर्गवासियो को अपने नृत्य से, भाव-भंगिमाअ रिझाती-लुभाती रहती है। इसे आप क्या कहेगे–पाप या पुण्य?"

"महर्षि को जानना चाहिए कि स्वर्ग का विधान और है, और भूलोक और। स्वर्ग के विधान को भूलोक पर लागू नहीं किया जा सकता।"

"यह तो सरासर अन्याय है। असमानता है। असवैधानिक है। ऐसे संवि को तुरत बदल देना चाहिए।"

भरी इद्रसभा मे 'शेम-शेम' के नारे गूजने लगे। इद्रराज बडे असमजस पड गए। पहली बार उनके लोक मे जनमत ने आदिकालीन विधि-विधान खुली चुनौती दी थी। वह भी सोचने पर विवश हो चले थे कि क्या उन दीर्घकालिक परपरागत विधि-विधान 'आउट ऑफ डेट' हो चला था। कितु समय आवश्यकता थी तुरत निर्णय की, व्यवस्था की। इस आपत्ति से उब की। देरी या गलत कदम उनके सिहासन को भी उलट सकता था। अने पौराणिक देवता ऐसे थे जो इस मौके के लिए कब से दात गडाए बैठे थे।

इद्र के मानसिक द्वद्व पर विश्वामित्र ने एक कुशल अभिवक्ता की तर निर्णायक प्रहार किया–"यदि आपके नियम भू-लोक की नर्तकी को यहा रोक मे आडे आते हैं तो फिर हमे ही नरक मे स्थानातरित कर दिया जाए। स्वर्ग हम अब ऊब चले हैं। हम स्वेच्छा से लिखित आवेदन करने को तैयार है।"

"लेकिन विधानानुसार यह भी कहा सभव है। स्वर्ग और नरक क स्थानातरण कर्मों पर निर्भर करता है।" चित्रगुप्त ने फिर विधि-विधान क व्यवस्थाए स्पष्ट कीं।

विश्वामित्र क्रोध से आगबबूला हो गए। ऋषि-तेज मुखमडल पर झलक आया। पैर पटककर बोले, "तो ऐसे विधि-विधान मे आग लगा दो। हमे बताया गया था कि मोक्ष प्राप्त कर हम पूर्ण स्वतत्र हैं। अपनी इच्छा के स्वामी। स्वच्छन्द। लेकिन लगता है हमारे साथ धोखा किया गया है। हम तो यहा पर

क्द ह। अपनी इच्छा से स्वग के परकोटे म बाह‌र भा नह‌ निकल सकत उह मोक्ष ह या सजा।"

बहस वढता देख राजा इद्र ने व्यवस्था द "दोना पक्ष को सुन लिया गया ह कल भरा सभा मे निणय सुनाया जाएग" और सभा भग कर दा

भारी मन से इद्रराज अत पुर मे शया पर लुढक गए। आज ड्यूटी पर थी। स्वामी को अन्यमनस्क पा सोमरस का पात्र भर दिया। चित्ताकषक मुद्राए दिखाया। छेडखानी की। ठिठोला का। पर इद्र का मन था कि बहक हा नहा क्या सचमुच स्वग की अप्सराए कालातर मे आकषणविहीन हो गया ह? पर वे तो चिरयौवनाए ह। अक्षत सौदय-स्वामिनी। ऐसा कसे हो सकता ह?

सकट की इस घडी मे स्वभावानुसार इद्रराज को ब्रह्मा जी का स्मरण हो आया। हो-न हो, अब ब्रह्मा जी ही इस घोर सकट से उसे उबार सकते ह। तुरत अग-वस्त्र डाला और उड चले।

ब्रह्माजी तो सर्वव्यापी और सर्वज्ञानी ह। वह सारे सकट को न केवल देख रहे थे वरन् उस पर मनन भा कर रहे थे। इद्र को देखकर बोले "वत्स इस बार बुरे फसे हा।"

इद्रराज दडवत हो गए। विनयपूवक बोले "भगवन, इस सकट मे बचाओ। मुझे तो कुछ सूझ ही नही रहा है।"

ब्रह्माजी ने धीर गभीरता से समझाया "मै तुम्हारी समस्या पर ही विचार कर रहा था। मैंने दुनिया देखी है। तुम्हे यह सकट इसलिए लग रहा ह कि ऐसी समस्या तुम्हारे सामने तुम्हारे राज्य मे पहली बार उठी ह। मृत्युलोक के प्राणी तो ऐसी समस्याओ के अभ्यस्त हैं। वहा तो जनहित जन-भावना और जनमत अकसर ही उनके विधान से टकराता रहता है। वे सुविधा और मौका देखकर कभी विधान मे सशोधन कर लेते हैं और कभी जनता को बहका देते हैं। अकेले भारतवर्ष ने अपने सविधान मे अस्सी के लगभग सशोधन किए हैं। वहा के शासक ऐसे सकटो से निपटना खूब जानते हैं। इसमे शक नहीं कि राजनीतिक मामलो मे भू-लोकवासी समस्त ब्रह्माड मे सबसे निपुण है।"

"फिर मै क्या करू, भगवन? क्या एक मृतात्मा के लिए विधि-विधान वदल दू? भूलोक की तरह उसे मै भी सशोधित कर दू।"

ब्रह्माजी इद्र की आतुरता पर मुसकराए, "मैने यह तो नही कहा, वत्स।"

"तब मेरे लिए क्या आज्ञा है प्रभो। इस सकट की घडी मे मेरा मागदशन कीजिए।"

"तुम भूलोकवासियो से कुछ सीखो। तुम्हारी समस्या भूलोक जैसी है अत वही के हथकडे अपनाओ। न जल्दबाजी मे विधान मे सशोधन करो और न

पहला मुकदमा था जिसमे स्वर्गलोक का जनमत विधानसम्मत निर्णय के विरुद्ध भूलोक की जीवात्मा को नरक भेजने के स्थान पर अपने बीच स्वर्ग मे निवास कराना चाहता था।

सभा मे चित्रगुप्त ने न्यायाधिकारी का पक्ष प्रस्तुत किया—"इस नत्यागना ने भूलोक मे कोइ ऐसा पुण्य कर्म नही किया, जिससे उसे एक पल भी स्वर्ग मे रखा जा सके।"

प्रत्यावेदक की ओर से महर्षि विश्वामित्र ने कमान सभाली थी, "क्यो, क्या उसने भूलोक की जनता को रिझाया या लुभाया नही?"

"रिझाना और लुभाना हमारे विधान मे पुण्य कर्म नही है पाप कर्म है ऋषिवर।"

"यहा अप्सराए दिन-रात स्वर्गवासियो को अपने नृत्य से, भाव-भंगिमाओ से रिझाती-लुभाती रहती हे। इसे आप क्या कहेगे—पाप या पुण्य?"

"महर्षि को जानना चाहिए कि स्वर्ग का विधान और है, और भूलोक का और। स्वग के विधान को भूलोक पर लागू नहीं किया जा सकता।"

"यह तो सरासर अन्याय है। असमानता है। असवैधानिक है। ऐसे संविधान को तुरत बदल देना चाहिए।"

भरी इद्रसभा मे 'शेम-शेम' के नारे गूजने लगे। इद्रराज बडे असमजस मे पड गए। पहली बार उनके लोक मे जनमत ने आदिकालीन विधि-विधान को खुला चुनौती दी थी। वह भी सोचने पर विवश हो चले थे कि क्या उनका दीघकालिक परपरागत विधि-विधान 'आउट ऑफ डेट' हो चला था। किंतु इस समय आवश्यकता थी तुरत निर्णय की व्यवस्था की। इस आपत्ति से उबरने की। देरी या गलत कदम उनके सिहासन को भी उलट सकता था। अनेक पौराणिक देवता ऐसे थे जो इस मौके के लिए कब से दात गडाए बैठे थे।

इद्र के मानसिक द्वद्व पर विश्वामित्र ने एक कुशल अभिवक्ता की तरह निर्णायक प्रहार किया—"यदि आपके नियम भू-लोक की नर्तकी को यहा रोकने मे आडे आते हैं तो फिर हमे ही नरक मे स्थानातरित कर दिया जाए। स्वर्ग से हम अब ऊब चले हैं। हम स्वेच्छा से लिखित आवेदन करने को तैयार है।"

"लेकिन विधानानुसार यह भी कहा सभव है। स्वर्ग और नरक का स्थानातरण कर्मों पर निर्भर करता है।" चित्रगुप्त ने फिर विधि-विधान की व्यवस्थाए स्पष्ट कीं।

विश्वामित्र क्रोध से आगबबूला हो गए। ऋषि-तेज मुखमडल पर झलक आया। पैर पटककर बोले, "तो ऐसे विधि-विधान मे आग लगा दो। हमे बताया गया था कि मोक्ष प्राप्त कर हम पूर्ण स्वतत्र हैं। अपनी इच्छा के स्वामी। स्वच्छन्द। लेकिन लगता है हमारे साथ धोखा किया गया है। हम तो यहा पर

कद ह। अपनी इच्छा से स्वग के परकोटे से बाहर भी नहा निकल सकत यह मोक्ष ह या सजा।''

वहस बढती देख राजा इद्र ने व्यवस्था दी "दोना पक्षो का सुन लिया गया ह कल भरी सभा मे निर्णय सुनाया जाएगा।'' और सभा भग कर दा

भारी मन से इद्रराज अत पुर मे शैया पर लुढक गए। आज ड्यूटी पर रभा था। स्वामी को अन्यमनस्क पा सोमरस का पात्र भर दिया। चित्ताकषक मुद्राए दिखायीं। छेडखानी की। ठिठोली की। पर इद्र का मन था कि बहका हा नहा क्या सचमुच स्वर्ग की अप्सराए कालातर मे आकषणविहीन हो गयी ह? पर वे तो चिरयोवनाए है। अक्षत सोदय-स्वामिनी। ऐसा कसे हो सकता ह?

सकट की इस घडी मे स्वभावानुसार इद्रराज को ब्रह्मा जी का स्मरण हो आया। हो-न हो अब ब्रह्मा जी ही इस घोर सकट से उसे उबार सकते ह। तुरत अग-वस्त्र डाला और उड चले।

ब्रह्माजी तो सर्वव्यापी और सर्वज्ञानी है। वह सारे सकट का न केवल देख रहे थे वरन् उस पर मनन भी कर रहे थे। इद्र को देखकर बोले "वत्स इस बार बुरे फसे हो।''

इद्रराज दडवत हो गए। विनयपूर्वक बोले "भगवन इस सकट से बचाओ मुझे तो कुछ सूझ ही नही रहा हे।''

ब्रह्माजी ने धीर गभीरता से समझाया, "मै तुम्हारी समस्या पर ही विचार कर रहा था। मैने दुनिया देखी है। तुम्हे यह सकट इसलिए लग रहा है कि ऐसी समस्या तुम्हारे सामने तुम्हारे राज्य मे पहली बार उठी ह। मृत्युलोक के प्राणी तो ऐसी समस्याओ के अभ्यस्त हैं। वहा तो जनहित जन-भावना और जनमत अकसर ही उनके विधान से टकराता रहता है। वे सुविधा और मोका देखकर कभी विधान मे सशोधन कर लेते हैं और कभी जनता को बहका देते हैं। अकेले भारतवर्ष ने अपने संविधान मे अस्सी के लगभग सशोधन किए हैं। वहा के शासक ऐसे सकटो से निपटना खूब जानते हे। इसमे शक नहीं कि राजनीतिक मामलो मे भू-लोकवासी समस्त ब्रह्माड मे सबसे निपुण है।''

"फिर मै क्या करू, भगवन? क्या एक मृतात्मा के लिए विधि-विधान बदल दू? भूलोक की तरह उसे मैं भी सशोधित कर दू।''

ब्रह्माजी इद्र की आतुरता पर मुसकराए, "मैंने यह तो नही कहा वत्स।''

"तब मेरे लिए क्या आज्ञा है प्रभो। इस सकट की घडी मे मेरा मागदशन कीजिए।''

"तुम भूलोकवासियो से कुछ सीखो। तुम्हारी समस्या भूलोक जैसी है अत वही के हथकडे अपनाओ। न जल्दबाजी मे विधान मे सशोधन करो और न

नन्ना का आवाज को स्वाकारो। विधान बदलने का नाटक करो और जनमत का ध्यान बटा दो। याना साप भी मर जाए आर लाठी भी न टूटे।"

गुरु-मत्र पाकर इद्रराज प्रसन्नचित्त लाट आए। ब्रह्माजी ने हमेशा उन्हे आडे वक्त मे उबारा था। लाटने ही उन्होने आदेश दिया "रभा, हमारा गिलास सोमरस मे भर दो आर आज अपना बेहतरीन 'रभा-दभा' नृत्य दिखाओ।"

खचाखच भरी सभा मे इद्रराज ने निणय सुनाया-"जनमत का आदर करते हुए स्वग के विधि-विधान मे सशोधन हेतु एक आयोग का गठन किया जाता है, जो कि दो कल्प मे अपनी आख्या देगा। इसी बीच वर्तमान विधि-विधान का मर्यादाओ का उल्लघन न करते हुए जीवात्मा भूलोक की नर्तकी की नृत्य सेवाओ को स्वग के नृत्यागार के लिए उपलब्ध कराया जायेगा। इसके लिए उससे एक दीघकालिक अनुबध किया जायेगा।" तालियो की गडगडाहट से सभी ने निर्णय का स्वागत किया।

इद्र ने गर्विन विजेता की मोहक मुसकान के साथ चारो ओर देखा। उन्हे आतरिक सतोष एव सुख मिल रहा था।

कितु चित्रगुप्त अपने स्वभाव से मजबूर थे। उन्होंने शका प्रस्तुत की "स्वामी विधानानुसार पृथ्वी की किसी जीवात्मा को स्वर्गलोक मे सेवाए देने के लिए विवश नही किया जा सकता। यदि यह नृत्यागना अपनी नृत्य सेवाए इस लोक के लिए देने को स्वेच्छा मे तत्पर न हुई तो इस राज्याज्ञा मे विघ्न पड सकना है।"

जनसभा पर जैसे वज्राघात हुआ। राजा इद्र सोच मे डूब गए। चित्रगुप्त का विधान था कि बार-बार आडे आ रहा था।

युक्ति विश्वामित्र ने सुझायी-"हम प्रलोभन तो दे सकते है। प्रलोभन के विरुद्ध तो तुम्हारा विधान कुछ नही कहता चित्रगुप्त।"

महर्षि स्वय प्रलोभन के मारे हुए थे। यहा उनका पूर्वानुभव काम आ गया।

इद्रराज को राह मिल गयी। पुन आदेश प्रसारित किया, "भू-नर्तकी की सेवाए प्राप्त करने और उससे उचित अनुबध करने के लिए मेरी अध्यक्षता मे एक उपसमिति का गठन किया जाता है जिसमे जनभावना के प्रतिनिधि के रूप मे महर्षि विश्वामित्र ओर विधान की मयादाओ की रक्षा-हेतु चित्रगुप्त सहयोग करेगे।"

स्वर्गलोकवासियो ने भी अपनी ओर से अपने दायित्व की पूर्ति की। एक शिष्टमडल लेकर भू-नतकी से अनुरोध करने अतिथिगृह मे पहुच गए-"देवी हम सभी चाहते हे कि आप स्वर्ग मे ही रहे।"

"जी, वह तो अब रहना ही होगा।" मृतात्मा ने सहज स्वभाव उत्तर दिया। वह सारे हालात से अनभिज्ञ थी।

शिष्टमडल सिने अभिनेत्री के इस सहज भोलेपन पर मर मिटा–"आप धन्य है देवी। आपने हमारी बात मान ली।"

"वह तो अब माननी ही पडेगी। मे मर जो चुकी हू।" जीवात्मा का अपना विवशता का आभास था।

शिष्टमडल के सदस्यो की टिप्पणिया इस प्रकार थी–"देवी हमारे लोक म कोइ विवश नही है, सब पूर्ण स्वतत्र है। कल स्वय राजा इद्र चित्रगुप्त एव महर्षि विश्वामित्र देवी से नृत्य कला की सेवाए प्राप्त करने हेतु वाता करेगे।"

"हम तो देवी का पूर्व आश्वासन चाहते थे, जो हमे मिल गया।"

"हमे ज्ञात हुआ है देवी भूलोक के चलचित्र जगत की नवानतम नत्य-कलाओ मे प्रवीण एव पारगत है।"

"हमे विश्वास है कि देवी की नवीन नृत्य कला स्वग के नत्यागार मे नया जीवन डाल देगी। चार चाद लगा देगी।"

बाते अब भू-नर्तकी की कुछ-कुछ समझ मे आने लगी थी। अत चतुर सिने अभिनेत्री उसी भाव से राजा इद्र से वाता की प्रतीक्षा करने लगा जिस भाव से वह बबई के नये फिल्म प्रोड्यूसर से वाता करती थी।

राजा इद्र का बुलावा भी जल्दी ही आ गया। भव्य वातागह म राजा इद्र के अतिरिक्त महर्षि विश्वामित्र और चित्रगुप्त भी उपस्थित थे। नत्यागना के स्थान ग्रहण कर लेने पर देवराज ने गभीर स्वर मे कहा–"हम स्वगलोक का नत्यशाला के लिए आपकी नृत्य-सेवाए चाहते है।"

"इसे मै आदेश समझू या अनुरोध?" भू-नर्तकी ने फिल्मी डॉयलॉग मारा।

"इसे आप प्रस्ताव समझे, देवी।" विश्वामित्र ने स्पष्ट किया।

"क्या मै जान सकती हू कि इसके बदले मुझे क्या मिलेगा?"

"देवी क्या चाहती है?" राजा इद्र ने सीधा प्रश्न किया।

सिने अभिनेत्री सोचने लगी। स्वर्ग के रीति-रिवाजो से उसका पूर्व परिचय नहीं था। उसे शका हुई कि कही कम न माग ले अत उसने पूरा मुह खोल दिया, "दस अरब स्वर्ण मुद्राए।"

वार्तागह मे सभी ने विस्मय से एक-दूसरे को देखा। चित्रगुप्त ने मौन तोडा–"हमारे लोक मे मुद्राओ का प्रचलन नही है, देवि।"

"फिर किस का प्रचलन है?"

"सुख-सुविधाओ, आमोद-प्रमोद, शांति एव आनद का साम्राज्य हैं स्वर्ग पर इनमे से कुछ मागो, देवि।" महर्षि ने समझाया।

"यह सब तो मुद्राओ के बदले मिलता है बबई मे। प्रश्न यह हैं कि इनकी मात्रा कितनी होगी?"

"यहा मात्रा का भी कोई भेदभाव नहीं है। यहा प्रत्येक वासी समान रूप से सभी सुविधाओ और आनद का उपभोग करता है।" चित्रगुप्त ने स्वग का व्यवस्था का खुलासा किया।

"फिर आप मुझे विशेष दे ही क्या सकते ह। सभी कुछ तो कॉमन ह आपके यह। मे तो बहुत जल्दी ऊब जाऊगी यहा पर।" दीर्घासन पर घुटने समेटकर भू-नतकी ने मुद्रा बदली।

राजा इद्र सोच मे डूब गए। सिने अभिनेत्री विशिष्ट चाहती है स्वर्ग मे। पथ्वा पर साधारण नागरिक होने का कटु अनुभव उन्हे सावधान किए हुए है शायद।

उन्होंने प्रस्ताव किया—"हम आपको राज्य नर्तकी पद से सुशोभित करेगे।" और विश्वामित्र की ओर देखा। मानो महर्षि को जता रहे हो कि देखा हमने एकदम कितना बडा प्रलोभन दे दिया।

लेकिन सिने अभिनेत्री को मात्र यह प्रलोभन न लुभा सका। बोली—"इस पद के अतिरिक्त और क्या? मात्र राज्य अलकरण और पदविया तो दिखावटी और थोथी होती हैं। इनमे कोई जान नहीं होती। मुझे तो साथ मे कोई ठोस बात बताइए। पृथ्वी हो या स्वग, मै अब साधारण जीवन नहीं जी सकती।"

सुनकर इद्रराज को बुरा लगा। विश्वामित्र को भी ठेस पहुची। सहस्रो 'कल्प' स्वर्ग मे निवास करते हुए भी महर्षि आज तक स्वर्ग के साधारण नागरिक ही जाने-माने जाते थे और यह कल की छोकरी नर्तकी राज्य नर्तकी के पद को भी ठोस नहीं मान रही थी। सभवतया पृथ्वी के वातावरण ने उसके मस्तिष्क को दूषित और कलुषित किया हुआ था। फिर भी उन्होंने धीरज नही खोया। जनसमुदाय को आश्वासन जो दिया हुआ था।

पूछा—"देवी और ठोस क्या चाहती हैं?"

सिने अभिनेत्री ने सोचा—अब चूक गयी तो फिर पछताना होगा। बबई के फिल्म प्रोड्यूसरो का उसे पर्याप्त अनुभव था। जो शर्त खुलासा नही होती बाद मे उसी पर ठेगा दिखा देते हैं।

अत उसने मुद्रा बदलकर अपनी शर्त गिनानी प्रारभ की—

"मुझे स्वर्ग के राजा के समान ही रहन-सहन की सभी सुख-सुविधाए उपलब्ध होगी। नत्य-प्रस्तुति मै अपनी इच्छा और अपनी सुविधानुसार जब चाहूगी और जितना चाहूगी, करूगी। हर नृत्यु-प्रस्तुति की विडियो कैसेट तैयार की जाएगी, जिस पर मेरा एकाधिकार होगा। यह विडियो कैसेट भूलोक एव अन्य मडलो पर भी दिखाई जाएगी और इससे प्राप्त समस्त शुल्क मेरे खाते मे जमा होगा। स्वर्गलोक मे भी विडियो कैसेट पर शुल्क लिया जाएगा, जिसका पूर्ण स्वामित्व मेरा होगा। यह अनुबध लिखित होगा और मात्र पाच वर्ष के लिए

होगा। इसके बाद नयी शर्तों पर नया अनुबध किया जा मकेगा जो पणतया मेरी शर्तों पर और मेरी इच्छानुसार ही होगा।"

सुनकर सभी अवाक् रह गए।

स्वर्ग के विधि-विधान एव परपरानुसार इनमे मे एक भी शर्त व्यावहारिक एव स्वीकार्य नही हो सकती थी। इद्रराज निराशा मे डूब गए विधानानुसार आदेश देकर वह इस मृतात्मा को विवश नही कर सकते थे। महर्षि को लगा कि पृथ्वी के पर्यावरण से इस नृत्यबाला का दिल आर दिमाग दूषित हो चुका है। उन्हे पहली बार सशय हुआ कि कहा उसकी ये पृथ्वीजन्य बीमारिया उनके लोक मे न फैल जाए।

चित्रगुप्त ने एक अँतिम कोशिश फिर की "देवि आपकी शर्ते इस स्वर्ग-लोक मे मान्य नही है। आपको अपनी शर्तो का त्याग कर स्वामी द्वारा प्रस्तावित राज्य नर्तकी का पद स्वीकार कर लेना चाहिए। इस विशिष्ट पद मे हमारे लोक मे विशिष्ट सुविधाए निहित हैं।"

यह सिने अभिनेत्री कइ बार प्रारभ मे, बबइ के प्रोड्यूसरो के इसी प्रकार के बहकावो से छली गयी थी। बाद मे उसने सचेत होकर उनसे निपटना सीख लिया था। मोल-भाव मे थोडा अडे रहना ठीक रहता हे। बाद को सुख मिलता है। अत अपने पूर्व-अनुभवानुसार वह अड गयी–"इससे कम मे तो मेरा काम नहीं चल सकेगा, चित्रगुप्त जी।"

तीनो स्वर्गात्माओ ने हताशा से एक-दूसरे को निहारा। फिर मत्रणा कक्ष मे जाकर विचार-विमर्श किया। जनभावना के प्रतिनिधि विश्वामित्र भी यह मान रहे थे कि यह मृतात्मा गभीर रूप से 'अहम' रोग से पीडित है और यह छुआछूत फैलाने वाला रोग समूचे स्वर्गलोक के लिए घातक सिद्ध होगा। अत उन्होंने भी राजा इद्र और चित्रगुप्त से एकमत होते हुए हथियार डाल दिए। सिने अभिनेत्री भू-नृत्यागना की नवीन चित्ताकर्षक नृत्य-कला का प्रलोभन त्याग दिया।

वार्ता-कक्ष की उच्च स्तरीय वार्ता भग हो गयी। इद्रराज ने दडाधिकारी को आदेश दिए, "भू-नर्तकी को विधानानुसार तुरत नया जन्म देकर पुन भूलोक पर वापस भेज दिया जाए।" इस आदेश के लिए इद्रराज को किसी प्रकार की कोई विवशता नही थी।

स्कूटर कब लुटा?

भारतवर्ष के 'बी' और 'सी' क्लास शहरो मे मध्यवर्गीय परिवारो की गतिशीलता स्कूटरो पर निर्भर करती हैं। इस वाक्य पर आप जितना मनन करेगे उतना ही इसकी सच्चाइ से प्रभावित होते चले जाएगे। स्कूटरो के हर 'मेक' और 'ब्राड' की दिन-रात बढती कीमते और इनकी निर्माता कपनियो के शेयरो का चढता बाजार मेरे कथन का प्रामाणिक थर्मामीटर है। कुछ भी हो मै अपने परिवार के सभी बुजुर्गों सहित अपनी श्रीमती जी को भी यह समझाने मे सफलता प्राप्त कर चुका था कि स्कूटर अब मेरे लिए फिजूलखर्ची न होकर एक आवश्यकता है जिससे मेरे जीवन मे गति आ सकती है और उनकी फरमाइशे महीनो के स्थान पर कुछ ही दिनो मे पूरी की जा सकती है। और यही कारण था कि पिताश्री के पी॰ एफ॰ श्रीमती जी के गहने, मा की अल्पबचत और अपना एक साल का सिगरेटकट जोडकर मै पिछले हफ्ते एक चमचमाता स्कूटर ले आया था।

इस नव-आगन्तुक स्कूटर ने मेरे जीवन को अधिक गतिशील बनाने के साथ-साथ उसे नियमित भी कर दिया था। रोज सुबह सात बजे मै अपने स्कूटर को नहलाता-धुलाता था और साय सात बजे के बाद उसकी एक वेट ड्राइ क्लीनिंग करके परिचित सर्किल मे उसे घुमाने निकलता था। हमारा देश आज भी जिन बहुत-सी बातो मे पिछडा हुआ है उनमे एक यह भी है कि यहा किसी परिवार मे नया स्कूटर आ जाने की सूचना-प्रेषण का कोई सही और सटीक उपाय नहीं है। हमारी सरकार दूर-सचार मत्रालय पर कितना भारी खर्चा कर रही है लेकिन उसने भी अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया है। अत अपने नये स्कूटर के प्रचार के लिए मुझे अपने ही प्रयत्नो पर निर्भर रहना पड रहा था।

मेरे सौंदयबोध ने मुझे चेता दिया था कि नये स्कूटर पर पुराने कपडे नही फबते। ऐसा लगता है कि बैठनेवाला स्कूटर कहा से मागकर लाया है। इसलिए कुछ दोस्तो से उधार लेकर मैंने दो नयी ड्रेसे भी बनवा ली थीं और अब कुटुबियो परिचितो और दोस्तो से ठाट से मिलने का क्रम निर्बाध-गति से

सम्पन्न हो रहा था। धूल से अटे औपचारिक निमत्रण भी झाड-पोंछकर चमकाए जा रहे थे और मुरझाए-सबधो की जडो मे पानी देकर उन्हे हरा किया जा रहा था।

सबधो के नवीनीकरण का यह क्रम अभी इसी प्रकार कुछ हफ्ते तक चलते रहना था अगर बीच मे ही एक दुर्घटना न घट गइ होती।

हुआ यो कि सात बजते-बजते मै उसी शान-शौकत से शास्त्रीनगर-निवासी एक्साइज इस्पेक्टर गोतम शर्मा से सबध उजालने निकल पडा था। चार माह पूव उन्होने कस्टम से पकडी एक ह्विस्की की बोतल प्रेजेट की थी। ह्विस्की की बोतल वह जिस सूटकेस मे ढापकर लाए थे वह सूटकेस उनकी धरोहर के रूप मे अभी तक मेरे पास ही विराजता था। इससे पूव स्कूटर न होने के कारण मैं उनकी धरोहर लौटा न सका था। लेकिन अब मेरे पास अपना नया स्कूटर था सो धरोहर को और अधिक रोकने का मेरे पास न कोइ बहाना था और न ही कोई औचित्य। अत मित्र का सूटकेस लादकर मै शास्त्रीनगर की ओर प्रस्थान कर रहा था।

मै यह तो नहीं कह सकता कि दुर्घटना को किसने आकर्षित किया था उस सूटकेस ने, चमचमाते नये स्कूटर ने, मेरी नयी ड्रेस ने या तीनो ने, लेकिन सिविल लाइस का चौराहा निकलते-निकलते सामने से एक मोटर साइकिल पर दो सवार तेजी से मेरे पास आकर रुके और उनमे से पिछले सवार ने बडी फुर्ती से अपनी मुट्ठी से मेरी आखो की ओर कुछ फेका। मेरी आखे बद हो गयी। स्कूटर का हैडिल लडखडाया और मैं घबराकर स्कूटर रोक उससे उतर गया। आखे जलने लगी थी और आभास हो गया था कि फेका हुआ द्रव्य धूल या मिट्टी नहीं, मिरच थी, पिसी हुई लाल मिरचे। मैंने कमीज की कोहनी से आखे पोछते हुए दूसरे हाथ से जेब से रूमाल निकाला। तभी मेरी चेतना से स्कूटर के स्टार्ट होने का स्वर टकराया। जलती आखो को कोशिश करके खोला तो देखा कि वही मिरच झोकने वाला सवार मेरे स्कूटर पर बैठा उसे विपरीत दिशा मे मोटर साइकिल सवार के साथ भगाए लिये जा रहा था। मिरचो की जलन भूल मैं भी सुनसान सडक पर चिल्लाता हुआ उनके पीछे भागा, लेकिन स्कूटर और आदमी की दौड मे आदमी भला कब जीत सका है। लगभग आधा फर्लांग भागकर मै हाफने लगा था और स्कूटर नजरो से ओझल हो गया था। आखो मे जलन हावी होने लगी थी और हालांकि मैं अनेक बार आखे पोछ चुका था, मुझे तुरत पानी की दरकार थी।

दुर्घटना के इन कुछ क्षणो मे मेरे मुह से चिल्लाहट मे क्या-क्या निकला था, इसका मेरी चेतना को ज्ञान नहीं था। लेकिन लगातार शोर सुनकर उस कम चलने वाली सडक पर भी कुछ लोग मेरे पास आ गए थे जिन्होंने मुझे पास

के ही एक नल पर ले जाकर मेरी आखे धुलवाइ थीं, जो सूजकर मोटी और लाल हो गयी थी। जलन मे कमी आने पर मुझे आभास हुआ कि मेरा इकलौता नया चनचमाता हुआ स्कूटर लुट चुका था। लोग मुझसे पूछ रहे थे, "क्या हुआ? आखे अब कैसी है? इन मोटर साइकिल सवारो को तुम जानते हो? सूटकेस मे क्या माल था?" पर कोइ यह नही पूछ रहा था "स्कूटर नया था या पुराना? कौन से ब्राड का था? कौन-सा मॉडल था?"

कुछ लोग अब एक छोटी-सी भीड मे बदल गए थे। उन्हे मेरा हर उत्तर स्वीकार्य था किंतु इसमे संदेह हो रहा था कि स्कूटर पर लदा वह सूटकेस खाली था। मैने सुना उस भीड मे कुछ लोग दबी जबान मे कह रहे थे, "लगता है यह आदमी नबर दो का धधा करता है। खाली सूटकेस को कोई भला क्यो लूटेगा? जरूर उसमे कोई मोटा माल था। इन्कमटैक्स वालो के कारण यह पर्दा डाल रहा है।"

तभी भीड मे मे एक सुझाव आया, "वारदात की रपट तुरत थाने मे करो। लुटेरे दूर नहीं गए होगे। पुलिस नाकाबदी करके उन्हे पकड भी सकती है और माल भी बरामद करा सकती है।" एक सहृदय अपने स्कूटर पर बैठकार मुझे थाना सिविल लाइस के दरवाजे पर भी छोड आए। उनका स्कूटर लगभग आठ साल पुराना था, लेकिन इससे क्या होता है। पुराने स्कूटर ने भी इस दुर्घटना को कुछ तो गतिशीलता प्रदान की ही थी वरना अपने स्कूटर के लुटने पर मैं तो गतिविहीन हो चला था।

सूजी हुइ मिचमिचाता आखो से मैं थाने मे इस्पेक्टर साहब के सामने बैठा था। सारी वारदात विस्तार से सुनने के बाद इस्पेक्टर ने प्रश्न किया–"आपने मोटर साइकिल का नबर नोट किया?"

"मेरी आखो मे मिरचे झोक दी गयी थी।"

दूसरा प्रश्न आया–"उन मोटर साइकिल सवारो को पहचान सकते हो?"

"कुछ-कुछ। मिरचे डालने से पूर्व सामने से आते हुए मैंने उन्हे एक झलक देखा था। आगे बैठे मोटर साइकिल चलाने वाले को ज्यादा अच्छी तरह पहचान सकता हू।"

"गुड" कहकर इस्पेक्टर ने घटी बजा दी, "फोटो एलबम लाओ।"

"मुझे इस्पेक्टर का व्यवहार बडा प्रभावित कर रहा था। वह टेलीविजन के शरलक होम्स की तरह ही बडे नपे-तुले शब्दो मे इस दुर्घटना के तल मे पैठता चला जा रहा था।

फोटो एलबम के दो पृष्ठ खोलकर मेरे सामने रख दिए गए। इन पर लगभग सोलह फोटो लगे थे जो आखो मे मिरचे झोककर लूटने वाले गिरोह के सदस्य बताए जाते थे। "इनमे से कौन था?"

मैंने सभी फोटो पर दृष्टि जमाई। अपना स्मरणशक्ति पर पूरा बल दिया पर मोटर साइकिल सवारो का हुलिया उन फोटो से बिलकुल नही मिलता था। सो कहना पडा कि इनमे से कोई नहीं हैं।

निराश इस्पेक्टर ने गहरी सास छोडकर एलबम बद कर दी। पास बैठे सब-इस्पेक्टर से बोले, "जनता हमको बिलकुल कॉपरेट नहा करता। मोटर साइकिल का नबर नही है। मुल्जिमो के फोटो पहचान नहीं सकते और हमसे चाहते हैं कि हम वारदात खोल दे। जादू का चिराग है क्या हमारे पास।"

शरलक होम्स का व्यक्तित्व धीरे-धीरे यू० पी० पुलिस मे परिवर्तित होने लगा था। साथ बैठे सब-इस्पेक्टर ने प्रश्न दागा-"सूटकेस मे क्या-क्या था?"

मै इस सभावित प्रश्न का उत्तर पहले ही दे चुका था। "खाली था वापस लौटाने ले जा रहा था।" सो वही दोहरा दिया।

"अजीब बात है, खाली सूटकेस को लूटने का रिस्क लिया उन्होंने।" इस बार सदेह के घेरे मे मै था।

मैंने स्पष्टीकरण दिया, "और मेरा नया स्कूटर भी तो था।" मेरे उत्तर से बेखबर इस्पेक्टर ने पूछा, "क्या करते हो?"

यह जानकर कि में सरकारी नौकरी करता हू, उसका मुह लटक गया। मुझे व्यापारी मानकर उनके पुलिसिया मन ने जो ताना-बाना बुना होगा उसे मेरे सरकारी नौकर होने की जानकारी के एक ही झटके ने छिन्न-भिन्न कर दिया था। सब-इस्पेक्टर ने इस्पेक्टर के सामने दूसरा सुझाव रखा "सर, यह तो मालूम कर ले कि वारदात किस स्थान पर हुइ थी। सिविल लाइस रोड का उत्तरी हिस्सा थाना लालकुर्ती मे लगता है। कही हम बेकार ही सिर खपा रहे हो।" अब उन्हे मेरा केस अर्थहीन लग रहा था सो उनकी मानसिकता मुझसे छुटकारा पाने की बन गयी थी।

मेरी यह कमजोरी बचपन से रही है कि मै पूरब पश्चिम, उत्तर, दक्षिण का झझट नही समझ पाता हू। यह दिशाज्ञान मुझे हमेशा भ्रमित करता रहा है। सो मौका-ए-वारदात की स्थिति मुझे उन्हे कुछ इस तरह समझानी पडी "बेगम बाग से शास्त्रीनगर जाते हुए सिविल लाइन्स रोड पर दायीं ओर।" इस्पेक्टर ने फिर पूछा "दायी ओर या बायी ओर?" "दायीं ओर ही चलना होता है इसलिए मै ट्रैफिक नियमो के अनुसार दायीं ओर ही चला रहा था।" सब-इस्पेक्टर ने थोडा नाराजगी से पूछा, "खाली सडक देखकर मस्ती मे स्कूटर बायीं ओर तो नहीं मोड दिया था?" "सवाल ही नही उठता। मै नियमो का पाबद हू।" मेरा उत्तर था। दोनो ने एक-दूसरे को आखो ही आखो मे झाका और चुप हो गए। दरअसल, सिविल लाइस रोड का दाया हिस्सा थाना सिविल लाइस के कार्यक्षेत्र मे आता था और बाया थाना लालकुर्ती के कार्यक्षेत्र मे। अब यदि गलती से भी

मेरा स्कूटर सडक के मध्य से एक इच दूसरी ओर खिसक गया होता या मैं इस वात' मे एक इच भी जुबिश खा गया होता तो मुझे अब तक की सारी कायवाही पर पानी फेरकर अपनी रिपोर्ट लिखाने के लिए थाना सिविल लाइस से उठकर थाना लालकुर्ती जाना पडता।

उनका मोन मैंने तोडा "आप मेरी रपट लिख लीजिए।"

"कोइ चश्मदीद गवाह है?" सब-इस्पेक्टर अभी तक झुझलाया हुआ था।

"जी, मोटर साइकिल और स्कूटर को भगाकर ले जाते हुए कई लोगो ने देखा था।" मैंने शात भाव से प्रत्युत्तर दिया।

"कह' ह वे कई लोग?" इस्पेक्टर ने यू० पी० पुलिस के लहजे मे पूछा।

इस बार अचकचाने की बारी मेरी थी। सिविल लाइस रोड के प्रत्यक्षदर्शियो मे से तो वहा कोइ न था। वह पुराने स्कूटर के मालिक सहृदय महानुभाव भी थाने पर मुझे छोडते ही भाग खडे हुए थे। हा अब तक इस दुर्घटना की जानकारी मेरे घर तक पहुच चुकी थी। अत मेरे परिवारगण मित्र, हितैषी और पडोसी थाने के अहाते मे आ जुटे थे और इस्पेक्टर के कमरे से मेरे निकलने का इतजार कर रहे थे। मेरे अपने लोगो मे से कुछ खिडकी के काच से अदर भी झाक रहे थे। मैंने इस्पेक्टर से कहा—"मैं अभी देखकर लाता हू।" और कमरे से बाहर आ गया।

अपराध हुआ था। सरेराह नया स्कूटर लूटा गया था अत एफ० आई० आर० तो लिखी ही जानी चाहिए थी। अब यदि सडक के असल चश्मदीद गवाह नदारद हो तो क्या अपराध की रपट भी न लिखी जाए। थाने के अहाते मे एकत्र हितैषियो मे से दो को सारा वाकया सुना-समझाकर चश्मदीद गवाही के लिए तैयार किया गया। तब जाकर कहीं मेरे नये स्कूटर लूटने की एफ० आई० आर० दज की जा सकी। आज अपने देश मे सत्य को झूठ की बैसाखियो का सहारा लेकर चलना पडता है।

एफ० आई० आर० लिखने से पहले इस्पेक्टर ने एक बार फिर बडी गहराई से मेरी आखो मे झाककर पूछा था "तो तुम एफ० आई० आर० लिखवाना ही चाहते हो?" मानो कह रहा हो कि बच्चू, न लिखाओ तो अच्छा है। थाने की सीमाओ मे वर्दी की मर्यादा मे और मेरी जानकार भीड की उपस्थिति मे वह शायद चाहकर भी इससे ज्यादा खुलासा नहीं कह सका था, वरना शायद वह मुझे कुछ और ऊच-नीच और व्यावहारिकता समझाता।

"देखिए, मेरा नया स्कूटर तो लुटा ही है।" मैंने ससकोच उत्तर दिया था।

"ठीक है फिर लिखाइए, वाकया कितने बजे का है? यानी स्कूटर कितने बजे लुटा?"

"सात बजे का।" मेरा संक्षिप्त उत्तर था, क्योंकि मैं घडी में देखकर सात बजने मे पाच मिनट पर घर से निकला था।

"और अब एफ० आई० आर० कितने बजे लिखी जा रही है?" इस्पेक्टर उसी प्रकार रजिस्टर पर झुका था। मैंने अपनी घडी पर निगाह डाली जिसमे नौ बजे थे। मैंने कहा, "अब नौ बजे है।" स्कूटर की खरीद के सभी कागजात घर से मगा लिये गए थे। उसकी रसीद सख्या, स्कूटर नबर, मेक चेसस नबर आदि सभी बाजाब्ता रपट मे नोट कर दिया गया था। जब मैं घर लौटा तो नये स्कूटर की जगह मेरे हाथ मे एफ० आई० आर० की कार्बन कॉपी की एक नकल भर थी।

सारी रात मुझे स्कूटर का गम सताए रहा। स्कूटर के ही सपने आते रहे। कमबख्त मिरचे झोकनेवाले ने यह भी न देखा कि कितनी मेहनत से मैंने वह स्कूटर हासिल किया था, उसके लिए कितने अरसे तक कितने जोड-तोड मिलाए थे।

सुबह की ताजा चाय और अखबार की हैडलाइन में मैं अपने परम प्रिय स्कूटर को लगभग भूल चुका था कि दरवाजे की कॉलबैल बज उठी। श्रीमती जी ने दरवाजा खोला तो सामने दीवान जी खडे मुसकरा रहे थे। मैं एक हाथ मे चाय और एक मे अखबार लिये दरवाजे पर ही आ गया। "बाबूजी, बधाइ हो, आपका स्कूटर मिल गया। अब तो मिठाई खिला दो।" दीवान जी सहज भाव से मुसकरा रहे थे।

मुझे अपने कानो पर विश्वास नहीं हो रहा था। यू० पी० पुलिस में स्काटलैंड यार्ड की-सी तत्परता कैसे आ गयी। रिपोर्ट लिखाने से बारह घटे से भी कम समय मे स्कूटर बरामद। मैंने दीवान जी की ओर एक बार फिर सतर्क दृष्टि डाली थी कि कहीं मजाक तो नहीं कर रहे हैं। लेकिन उनकी सहज मुसकराहट मे कोई कुटिलता या विकार नहीं दिख रहा था। मैंने दरवाजे से रास्ता बनाते हुए कहा, "आप अदर आइए न! कैसे मिला? कहा मिला?"

दीवान जी पूरी सिपहिया शान से मेरी दिखाई कुर्सी पर विराज गए। श्रीमती जी दौडकर रसोई से उनके लिए चाय ले आयीं। चाय की चुस्की लगाते हुए उन्होंने बताया कि नाइट ड्यूटी पर जब वह कपनी बाग का चक्कर लगा रहे थे तो माल रोड पर उन्हे एक स्कूटर एकात मे लावारिस खडा मिला। बहुत देर तक जब उसे कोई उठाने नहीं आया तो उन्होंने उसका नबर नोट करके थाने मे मेरी लिखाई एफ० आई० आर० से मिलवाया। नबर मिल गया था इसलिए वह स्कूटर थाने मे ले आए और अब स्कूटर थाने मे खडा है। हा सूटकेस स्कूटर के साथ नही था। फिर दीवान साहब जी ने भेदभरे शब्दो में पूछा, "क्या सूटकेस मे कुछ ज्यादा माल था?"

दीवान जी की सूचना से मेरी बाछे खिल उठी थी। रोम-रोम प्रफुल्लित था। जैसे किसी नये स्कूटर की लाटरी निकल आया हो सो दीवानजी के प्रश्न के भेद को भूल मै बोला "अजी सूटकेस को मारो गोली। चार सौ रुपये का और आ जाएगा। स्कूटर तो मिल गया न। हमे तो वही सही-सलामत चाहिए था।"

"आपको इस्पेक्टर साहब ने याद किया है। और मेरा इनाम न भूलिएगा।" कहकर दीवान जी चले गए। मेरी प्रसन्नता का इस समय कोई ठिकाना न था। भगवान की सत्ता पर मुझे इस समय पूर्ण विश्वास हो रहा था। जल्दी से बदन पर कपडे डाल म थाने पहुच गया था।

थाने के अहाते मे मेरा स्कूटर खडा था। मैने उसके चारो ओर चक्कर लगाकर देखा। कही कोइ डेट या खरोच नहीं आयी थी। स्कूटर वैसा ही वन-पीस था जैसा मै कल शाम उसे घर से सात बजे लेकर निकला था। मैंने मन ही मन सतोष की सास लेकर ईश्वर को धन्यवाद प्रेषित किया।

मुझे देखकर इस्पेक्टर अपने कमरे से बाहर आ गया था, "देखिए, हमने स्कूटर बरामद कर दिया।" मुझे लगा वह प्रशसा और दाद चाहता है। मैंने भी कजूसी नहीं दिखाइ, "आपने तो कमाल ही कर दिया, जनाब बारह घंटे के अदर-अदर स्कूटर बरामद। लोग खामखाह पुलिस पर लापरवाही का दोष लगाते रहते है।"

"लोगो का क्या है उन्हे तो कुछ न कुछ कहने को चाहिए। अब आप ही देख लीजिए। मेरे विचार से आपका स्कूटर छीना गया था सूटकेस मे माल होने की सभावना पर। पर आपने बताया कि वह खाली था। लुटेरे स्कूटर-चोर नही थे। इसे वे पचा नही पाए सो माल रोड पर छोड गए। देखिए, स्कूटर का सारा सामान मौजूद है, वरना चोर कैरियर तो क्या, पहिए और स्टप्नी तक उतार लेते हैं।" इस्पेक्टर का यह प्रात कालीन व्यवहार बडा दोस्ताना था।

मैंने उनकी प्रशसा मे फिर कुछ कहा था। यू॰ पी॰ पुलिस और उसकी कार्य कुशलता की भी अतिशयोक्ति की हद तक मुक्त कठ और मुक्त हृदय से तारीफ की थी फिर धन्यवाद भी दिया था। और इस सब औपचारिकता से उबरकर अत मे अपना स्कूटर ले जाने की अनुमति मागी थी।

मेरी बातो से बेहद प्रसन्न एव प्रभावित इस्पेक्टर ने मेरे अंतिम वाक्य मे स्कूटर ले जाने की माग सुनकर मुह लटका लिया था। एक मिनट मौन रहकर उसने मुझे दोस्ताना ढग से समझाया-"बाबूजी, नियमानुसार अब हम स्कूटर मजिस्ट्रेट साहब के लिखित आदेश पर ही छोड सकते है।"

"पर आप जानते हैं कि स्कूटर तो मेरा है, जो मुझे मिलना चाहिए।"

"वह तो है। मैं इससे कब इनकार कर रहा हू। पर एफ॰ आई॰ आर॰ लिखी जा चुकी है। केस दर्ज हो गया है। अब यह स्कूटर केस प्रॉपर्टी है। इसको छोडना या आपको लौटाना हमारे अधिकार-क्षेत्र से बाहर है।"

इस्पेक्टर मेरी निराशा-भरी मुखमुद्रा से थोडा विचलित हुआ था। उसने धेय बधाया, "देखिए, कानून और नियमो का पालन तो करना ही होगा। मेरी मानिए तो एक वकील कर लीजिए। वह जुडीशियल मजिस्ट्रेट से आपका स्कूटर आपकी सुपुर्दगी मे दिला देगा। लेकिन हम मजबूर है। कोट के आदेश के बिना हम स्कूटर किसी को नही सौप सकते।"

इस्पेक्टर के स्वर मे आत्मीयता गहराई थी। मैं अपना-सा मुह लेकर लाट गया। दफ्तर से छुट्टी ली और कचहरी मे एक दोस्त वकील के पास पहुच गया। सारे वाकये पर पहले उसने अफसोस जाहिर किया फिर स्कूटर मिलने पर प्रसन्नता दर्शायी और फिर जल्द से जल्द स्कूटर दिलाने के वादे के साथ मेरी पीठ ठोक दी। उनकी मजबूत ठोक से आश्वस्त होकर मैंने वकालननामे पर हस्ताक्षर कर दिए।

एफ० आई० आर० के आधार पर वकील साहब ने जुडीशियल मजिस्ट्रेट के लिए मेरी ओर से एक प्रार्थना-पत्र तैयार किया। फिर हस्ताक्षरो के लिए मेरे सामने बढा दिया। मैने पढा, उसके अंतिम पैराग्राफ मे लिखा था-"अत केस के अंतिम निर्णय तक स्कूटर मेरी सुपुर्दगी मे देने के आदेश प्रदान करने की कपा करे।" मैंने आश्चर्य से वकील साहब की ओर देखा, "स्कूटर तो मेरा है। अब मिल गया है, तो मुझे वापस मिलना चाहिए। ये सुपुर्दगी-वुपुदगी का क्या मतलब?"

वकील मित्र ने मेरी पीठ पर फिर एक धौल दिया, "यार मैं कब कह रहा हू कि यह स्कूटर मेरा है। तुम्हारा है, तभी तो तुम्हे दिलाया जा रहा है। पर सोचो, यह केस एक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य भी तो है। अगर यह स्कूटर नहीं होगा तो अपराधी को सजा कैसे मिलेगी? तुम घबराते क्यो हो? ये तो बस कानूनी औपचारिकताए है।" "पर अपराधी तो पकडे ही नहीं गए?" मैं सोच रहा था अपराधी को जब सजा मिलेगी, मिलेगी, मुझे तो अभी से मिल रही है। "पकडे तो जा सकते है। जब पकडे जायेगे तो मुकदमा चलेगा। और उस समय यह तुम्हारा स्कूटर अपराधियो को सजा दिलाने मे साक्ष्य का काम करेगा।" मित्र ने अपना कानूनी अनुभव बघारा।

"लेकिन यदि अपराधी पकडे ही नहीं गए तो यह मेरा स्कूटर हमेशा मेरे पास सुपुर्दगी मे ही रहेगा।" मैने आशका जाहिर की।

"यार, तुम इतने निराशावादी कब से हो गए?" वकील साहब ने फिर मेरी पीठ को थपथपाया, "कभी ऐसा हुआ है कि अपराधी न पकडा गया हो। और फिर रहेगा तो स्कूटर तुम्हारे पास ही।" वकील साहब पर इतना जिरह करने वाला मुवक्किल सभवतया पहले कभी नही आया था।

"पर मान लो पकडा ही नहीं गया तब? तब तो मेरा स्कूटर मेरे पास बतौर अमानत ही रहेगा न?" आशका थी कि मेरा पीछा ही नहीं छोड रही थी।

"तब फिर कोई और तरकीब सोचेगे। अब तो स्कूटर थाने से बाहर निकालो। स्कूटर मिलने की एक ही सूरत है कि मजिस्ट्रेट से सुपुर्दगी के आदेश करा लिये जाए। आखिर तुम्हारा स्कूटर अब केस-प्रॉपर्टी है।" वकील साहब इस बेवजह बहस से बोर हो चुके थे।

"यह तो सरासर अन्याय है।" अनायास ही मेरे मुह से निकल गया।

"पर है न्याय की पुस्तक के अनुसार ही।" हसकर वकील साहब ने ऐविडेस एक्ट मेरी ओर सरका दिया था। अनिच्छा और बुझे मन से मैंने प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर बना दिए।

जुडीशियल मजिस्ट्रेट ने चश्मे के पीछे से मुझे घूरकर देखा था, "तो ये स्कूटर तुम्हारा था।"

'था' शब्द पर मुझे गभीर आपत्ति थी। उसके स्थान पर 'है' शब्द का प्रयोग होना चाहिए था किंतु मेरे मुह से उत्तर निकला "जी सर।"

मजिस्ट्रेट ने मुझे समझाया, "देखो, यह स्कूटर अब केस-प्रॉपर्टी है। दो आदमियो की जमानत पर तुम्हे इस शर्त पर सौंपा जा रहा है कि तुम स्कूटर को हमेशा इसी हालत मे रखोगे। केस की जिस डेट पर इसकी आवश्यकता होगी, तुम इसे पेश करोगे। स्कूटर के कागजात कोर्ट की फाइल मे रहेगे और इस बीच तुम उसे किसी को बेचोगे नही। समझ गए न?"

समझ तो मैं रहा था किंतु मजिस्ट्रेट साहब की शर्तों पर मुझे घोर आपत्ति थी। अत मैं हिचकिचाया पर कुछ कहना ही चाह रहा था कि मेरे वकील ने मेरी ओर से समर्थन मे सिर हिला दिया, "यस योर ऑनर।" वकालतनामे पर हस्ताक्षर कराकर यह अधिकार उन्होंने मुझसे पहले ही प्राप्त कर लिया था।

जुडाशियल मजिस्ट्रेट साहब ने पूर्व-लिखित आदेश पर हस्ताक्षर खींच दिए और अपने ही स्कूटर की सुपुर्दगी का परवाना लेकर मै कोर्ट-रूम से बाहर आ गया।

मैं समझ नही पा रहा था कि मेरा स्कूटर सात बजे लुटा था जब मेरी आखो मे मिरचे झोकी गयी थीं या नौ बजे जब मैंने एफ० आई० आर० लिखाई थी।

मरता क्या न करता?

आजकल मैं अपने पडोसी अनोखेलाल जी से बहुत परेशान हू। गाहे-बगाहे आकर दिमाग चाट जाते हैं। न जाने क्यो, उन्हे सारे ससार के दुख-दर्द की चिता सताए रहती है। सताया करे, इससे मेरा क्या सरोकार। अगर सारे जहा का दर्द उनके जिगर मे है तो हुआ करे। पर दिक्कत तो यह है कि उन्होंने सारी दुश्चिताओं का त्राणदाता मुझ गरीब को ही क्यो मान रखा है? कोई भी बुलबुला उठा नहीं कि आ धमके मेरे पास सूई चुभवाने। और एक मैं हू कि एक अच्छे पडोसी के धर्म-निर्वाह के सकोच से नहीं उबर पा रहा हू। यही सोचते-सोचते झपकी लगी तो देखा कि शरीर के अदर दो कीटाणुओ का खुला द्वद्व-युद्ध चल रहा है।

रोग-निरोधक कीटाणु ने अपने अगले दो पजो में रोग-आक्रामक कीटाणु को जकड रखा था और खुली चुनौती दे रखी थी, "मैं एड्स के कीटाणुओं के अलावा किसी से डरने वाला नहीं हू। तू क्या समझकर यहा आया था, इस शरीर का कोई रक्षक नहीं है? बोल, यही बात थी ना?" रोग-निरोधक ने रोग-आक्रामक के पजे मरोड दिए थे।

रोग-आक्रामक कीटाणु दर्द से कराह उठा। बोला, "मैं तो पडोस में अनोखे लाल चौरसिया के यहा रहता था। रेगता-रेंगता इधर निकल आया। तुम्हारे स्वामी का हृष्ट-पुष्ट शरीर देखकर मुह मे पानी आ गया। लालच में आकर घुसपैठ कर बैठा। मुझे क्या पता था कि तुम अदर बैठे हो। मुझे माफ कर दो। मुझसे गलती हुई। मैं वापस चला जाऊगा।" रोग-आक्रामक कीटाणु गिडगिडाया।

"तुझे पता होना चाहिए, मेरे स्वामी मुझे रोज बादाम का निशास्ता पिलाते हैं। तेरे जैसो से रक्षा करने के लिए ही मुझे पाला-पोसा गया है। तू सच-सच बोल दे कि तू स्वय आया है कि अनोखेलाल जी ने तुझे जान-बूझकर भेजा है?" कहकर उसने दूसरा पजा भी जोर से उमेठ दिया। रोग-निरोधक को ज्ञात था कि अनोखेलाल जी जब-तब उसके स्वामी की खोपडी चाटने आ जाते थे। सो वह स्वामीभक्त अपना सदेह निवारण कर रहा था।

रोग-आक्रामक लगभग चीख उठा "सच मानो बडे भाइ, अनोखेलाल जी को तो मेरे आने का पता भी नही है। मैं तो बस उनके घर के प्रदूषण मे पला बडा हुआ हू। उनके मेहमानो को अपना भोजन बनाता रहा हू। फ्री-लासर हू। इधर-उधर घूमता-फिरता रहता हू। हा, शरण अनोखेलाल जी के ही यहा पाता हू। इस बार मुझे छोड दो फिर कभी इधर को मुह नहीं करूगा।"

रोग-निरोधक के सदेह का निवारण हो गया था। लेकिन पकडकर छोडना उसकी आदत मे शुमार न था। बोला, "बचकर तू अब जा नहीं सकता। मेरे स्वामी मुझे दिन मे दो पहर इसीलिए गिलास भर-भरकर दूध नहीं पिलाते कि मै तुम्हे छोडता फिरू। मेरी मासपेशिया देखी है? आज मै तुझे मसलकर तेरा कचूमर निकालूगा।"

रोग-आक्रामक को अपना अंतिम समय निकट लगा। 'मरता क्या न करता' वाली स्थिति बन गयी थी। सो श्री अनोखेलाल जी के सपर्क मे जो कुछ सीखा था, उस आधार पर एक दाव फेका–"गुरु, मै तो कमजोर हू, चाहे जो कर लो। पर कभी एड्स के कीटाणु से वास्ता पड गया तो क्या करोगे?"

"तू मुझे डरा रहा है। उसका तो सवाल ही पैदा नहीं होता। मेरे स्वामी लगोट के पक्के हैं। एड्स तो आसपास भी नही फटक सकता।" कहकर रोग-निरोधक कीटाणु ने एक कसकर उमेठ लगाइ।

"लगोट के पक्के सही, पर मन के तो कच्चे हैं। रागोली भार्गव के कॉलेज जाने के समय लॉन मे आकर नहीं बैठ जाते। कई-कई घंटे फिल्मी पत्रिका नहीं उलटते-पलटने रहते। टी॰ वी॰ पर स्टार प्लस का प्रोग्राम नहीं देखते क्या। एड्स का क्या है कभी भी आक्रमण कर सकता है।" दर्द सहकर भी रोगात्मक कीटाणु फटाफट बोल गया। मौत की छाया उसके सिर पर जो मडरा रही थी।

"मेरे मालिक का चरित्र हनन करता है बे, तुझे सबक सिखाना ही पडेगा।" कहकर रोग-निरोधक ने इतने जोर से हाथ घुमाया कि रोग-आक्रामक की अगली एक टाग उखडकर उसके हाथ मे आ गई। रोग-आक्रामक कीडा पीडा से दहल गया। उसका अग-भग हो गया था। पजे की जड से काला दूषित खून बह निकला था।

लेकिन जान अभी बाकी थी, जो गले में अटकी थी। किसी भी कीमत पर उसे बचना था। सो उसने फिर कोशिश की, "मेरा ऐसा कोई मतलब नहीं था, पहलवान। मैं तो यह बता रहा था कि वायरस बुखार की तरह सभव है कि भविष्य मे एड्स भी तरक्की करके बिना ससर्ग के ही आक्रमण करने लगे। केवल विचारो की तरगों पर तैरकर हमला करने की शक्ति प्राप्त कर ले। फिर तो यौन-विचारक भी सुरक्षित नहीं रह पाएंगे न।"

सुनकर रोग-निरोधक थोडा ढीला पडा। वायरस के गुण-स्वभाव से वह परिचित था। उसे न छूने की जरूरत पडती है, न पास आने की। रिमोट कट्रोल का तरह काम करता है। कही यह अवगुण एड्स मे विकसित हो गया तो? स्वामी के रगीन स्वभाव की उसे जानकारी थी। चोरी न सही हेराफेरी से बाज नहीं आते थे। सौदर्य के किशोरावस्था से पारखी रहे थे। विधाता की सुघड-सुडौल कृतियो को प्रशसा से बार-बार निहारते थे। सो सशय अकुरित हो उठा रोग-रक्षक सचेत हो गया।

पर रोग-आक्रामक कीटाणु से तो हार नही माननी थी न। सो बोला-"तू मुझे पाठ नही पढा। मेरे स्वामी पूर्ण सुरक्षित है। कल ही समाचारपत्र मे पढ रहे थे कि इस सदी के अत तक साठ लाख लोगो को एड्स की बीमारी होगा। इन साठ लाख लोगो मे मेरे स्वामी का कही नाम नही था।"

रोग-आक्रामक कीटाणु ने मौत की छाया के नीचे भी मुसकराने का नाटक किया। उसे उतनी ही देर जीवनदान मिल मकता था जितनी देर वह पहलवान रोग-निरोधक को बातो मे उलझाए रखे, अत फिर बोला-"लेकिन उनका नाम साठ लाख के बाद साठ लाख एकवा तो हो सकता है।"

"तू विश्व स्वास्थ्य सगठन के प्रमुख अधिकारी माइकल मर्सन की बात को गलत बता रहा है। उन्होंने सदी के अत तक साठ लाख कहे है तो साठ लाख ही रहेगे। साठ लाख एक नही हो सकते। तुझे आकडे के महत्त्व की कोई समझ नहीं है।" कहकर स्वास्थ्य-रक्षक ने रोग-आक्रामक को घुमाकर एक लात मारी। रोग-आक्रामक कीट तिलमिला गया।

मौत का फासला कुछ कदम का रह गया था। रोग-निरोधक कभी भी उसकी गरदन जड से उखाड सकता था। इसलिए असहनीय वेदना मे भी वाता का क्रम चालू रखना जरूरी था, इतना ज्ञान रोग-आक्रामक को अनोखेलाल जी के घर टी॰ वी॰ पर फिल्मे देखते-देखते हो गया था। बोला-"और इस सदी के बाद क्या होगा? तब तो तेरे स्वामी का नबर आ सकता है न?"

"उसमे अभी चार साल है। तब तक मै अपनी ताकत और बढा लूगा। आज से ही फिर वर्जिश शुरू कर देता हू। तब मै एड्स की टागे भी इसी तरह तोड दूगा। तू उसके लिए क्यो दुबला हो रहा है बे!" कहकर रोग-रक्षक ने रोगी कीटाणु की दूसरी टाग भी जड से अलग कर दी।

रोग-निरोधक कीटाणु हृष्ट-पुष्ट, निर्भीक, स्वामिभक्त ही नहीं लग रहा था वरन निर्दयी भी लग रहा था। उससे सहज छुटकारे की अब कोई सभावना शेष नहीं रह गयी थी। पर जीवन तो जीवन ही है। अंतिम क्षणो तक प्रयत्न करना चाहिए सो रोग-आक्रामक कीटाणु चापलूसी-भरे शब्दो मे अनुनय-विनय करने लगा, "हम तो तुम्हारे यहा दो-चार रोज के लिए मेहमान बनकर आए थे। किसी

अच्छे डॉक्टर की दवा-दारू पिलवाते। दो-चार रोज खा-पीकर चले जाते। तुम्हारे स्वामी को भी आराम मिलता। तुम तो खामखाह मारपीट पर उतर आए।"

"दवा-दारू क्यो, रवडी और मलाई खिलाता। सारा अतिथि धर्म मेरे स्वामी के ही हिस्से मे आया हे न। पोल का माल समझ रखा है।" कहकर रोग-निरोधक ने एक लात और जड दी।

रोग-आक्रामक पेट पकडकर बैठ गया। शेष बचे दोनो हाथ जोडकर बोला-"प्रभो! कोइ रास्ता है जो जीवनदान मिल सके। मै सारी जिदगी तुम्हारा गुलाम बना रहूगा। तुम्हारे इशारे पर नाचूगा और जो हुकुम दोगे बजा लाऊगा। पर इस बार छोड दो। फिर कभी गलती न होगी।"

स्वामिभक्त रोग-निरोधक को अनोखा उपाय सूझा "अच्छा, एक शर्त पर छोड सकता हू।"

"आप हुक्म तो करे, पहलवान जी, मुझे सब स्वीकार है।" रोग-आक्रामक को अधेरे मे रोशनी की एक किरण दिखाई दी।

"तो जा, तू अभी वापस जाकर अपने स्वामी श्री अनोखेलाल जी के शरीर मे प्रवेश कर जा। ऐसा रोग दे कि कम-से-कम एक हफ्ता इधर मुह न कर सके।" रोग-निरोधक ने आदेश दिया।

"आपका हुक्म सिर-माथे, गुरु! ऐसा डक मारूगा, ऐसा डक मारूगा कि एक हफ्ता क्या पद्रह दिन भी बिस्तर से न उठ पायेगे चाहे बडे से बडा डॉक्टर बुला ले।" रोग-आक्रामक ने तुरत वायदा किया।

सशर्त अभयदान पाकर रोग-आक्रामक कीटाणु अपनी शेष दो टागो पर लगडाता हुआ वापस चला गया। सचमुच माननीय पडोसी श्री अनोखेलाल चौरसिया अगले पद्रह-बीस दिन मेरे पास नही आए। अब मुझे उनकी याद सताने लगी है।

सुधार का बुखार

धर्म-निरपेक्षता आजकल एक जलती हुई समस्या है। इसके चारो ओर इतनी आग सुलगी है, इससे इतनी भयकर लपटे निकल रही है कि इसे किसी भी कोण से छुआ जाए, कितनी भी सावधानी बरती जाए, हाथ-पैर जले बिना नहीं रह सकते। इसलिए धर्म-निरपेक्षता को नामी-गिरामी राजनीतिज्ञो, महान विचारको उद्भट बुद्धिजीवियो, संविधान-मर्मज्ञो और राष्ट्र के कर्णधारो को सौंपकर मैंने अपना क्षुद्र ध्यान जाति-निरपेक्षता पर केंद्रित करना ही श्रेयस्कर समझा।

हर शुभ कार्य घर से ही प्रारभ होना चाहिए, इसलिए मैंने मेरे परिवार मे घोषणा की—"इस बार लडकी के विवाह मे जाति-पाँति का विचार नहीं करेगे।"

श्रीमती जी ने आखे तरेरी। भृकुटी चढायी। फिर इशारा करके दूसरे कमरे मे बुलाया, "तुम्हारी मति मारी गयी है क्या? जवान लडकियो के सामने कच्ची-पक्की बाते कर रहे हो। अगर वे इन्हे सच समझ बैठीं तो ?"

"तो क्या मैं झूठ बोल रहा हू!" जाति-निरपेक्षता मेरे सिर पर सवार थी। सुधार के बुखार का पारा एक सौ सात डिग्री पार कर चुका था।

"मेरे घर मे तुम्हारा यह सुधार-वुधार नहीं चलने वाला है, जी। अपने आदर्श और नारे किसी सभा-सोसायटी के लिए रखो। ये मच पर और किताबो मे ही अच्छे लगते है। और मेरा घर न तुम्हारा मच है और न तुम्हारी किताब। मुझे अभी बिरादरी मे जीना है।" श्रीमती जी तुनक गयीं।

लगा, कहीं कोई गलती हो गयी थी। घर अकेला मेरा नहीं था, मेरी घरवाली का भी था। बराबर नहीं, शायद कुछ ज्यादा ही। इस कहावत म अभी भी जान थी—'घर का जोगी जोगिया, आन गाव का सिद्ध'। महाकवि रवींद्रनाथ टैगोर को भी अपने देश मे तभी ठीक से मान्यता मिल सकी थी जब विदेशियो ने उन्हे नोबल पुरस्कार दे दिया था। महान-कर्मों को ये प्रारम्भिक झटके तो झेलने ही पडते हैं। गलती अपनी ही थी। श्रीगणेश घर से नहीं, अपने से करना चाहिए था।

सो नाम के आगे जातिसूचक 'अग्रवाल' लगाना बद कर दिया। दफ्तर के कनिष्ठ सहयोगियो ने दो-चार बार तो स्वय ही भूल-सुधार कर ली पर जब

यह भूल बार-बार और लगातार होने लगी तो एक रोज पाडेजी ने छेड ही दिया, "क्या धर्म-परिवर्तन कर लिया है?"

"धर्म नही जाति।"

"अब कोन-सी पकडी? फायदा तो अनुसूचित मे है। तरक्की के सारे दरवाज़े खुल जाते हे।" पाडे जी ने उलाहना दिया।

मैने जवाब देना भी उचित नही समझा।

मुझे पाडे जी की क्षुद्र बुद्धि पर तरस आया। समाज क्यो नहीं तरक्की कर पाता अब यह बात मेरी समझ मे आने लगी थी। अरे, समाज तो वह ताकत हे कि कहीं से कही छलाग लगा दे, समुद्र के समुद्र उलाघ जाए, लेकिन उसके दूषित दिमाग मकुचित धारणाए उसके पेरो मे बेडिया डाले हुए है। उसे जकडे हुए हे। पकडे हुए हे। वह कूदना तो दूर, चल भी नहीं पा रहा है।

बात सारे दफ्तर मे चल निकली थी। अनुसूचित जाति अपनाकर मै जल्द मे जल्द तरक्की चाहता हू। इत्तफाक से मेरा 'बॉस' इसी जाति विशेष का बदा था। मुझसे जूनियर होकर भी मेरा बॉस था। मुझे इसमे कभी कोई ऐतराज नही हुआ था। न कोइ शिकवा था और न शिकायत। लेकिन मेरा दफ्तर था कि सब समझ रहा था—वह सब भी जो मै नही समझ पा रहा था।

बात बॉस तक भी पहुच ही गयी। एक रोज बुला भेजा। "अग्रवाल जी, मुझसे कोइ शिकायत हे क्या?" उनकी शालीनता मे कोइ कमी नहीं थी।

"नहीं तो।" मुझे अचानक भूमिका समझ नही आयी थी।

"फिर मै यह सब क्या सुन रहा हू?" प्रश्नवाचक बन उन्होंने अपना सारा ध्यान मेरे चेहरे पर केन्द्रित कर दिया था मानो मेरा चेहरा पढ रहे हो।

बात अब मेरी समझ मे आने लगी थी। बोला "सर, मैं किसी का मुह तो बद कर नहीं सकता। पर सच मानिए, मेरा मन साफ है।"

"मुझे तुमसे यही आशा थी। बैसे तो तुम खुद ही समझदार हो। फिर भी याद दिला दू कि हमारे देश मे झूठा जाति प्रमाण-पत्र बनवाना दडनीय अपराध है।" उनकी चेतावनी मे कही ईर्ष्या और आशका भी थी।

लेकिन मैं था कि एक महान लक्ष्य की दिशा मे बढ रहा था। चारो ओर बिखरी ये ईर्ष्याए और आशकाए अब दिग्भ्रमित नहीं कर सकती थी।

मेरे एक सहयोगी महान विचारक और प्रकाड विद्वान थे। उलझन मे सदैव मेरे प्रेरणा-स्रोत बनते थे। दफ्तर मे दिवाकर जी के नाम से प्रख्यात थे। मैंने उनकी शरण मे जाने की ठान ली। वह भी मेरे उद्देश्यो से प्रभावित हुए किंतु मेरे प्रयत्नो से असहमत थे। पूछा, "तुमने 'अग्रवाल' का त्याग कितने समय पूर्व किया था?"

"लगभग चार माह हो गए।"

"इसके बाद किसी और ने यह त्याग किया?"

"अभी तो नही।"

"और कोई करेगा भी नही।"

"क्यो?" मै सकपका गया था।

"क्योंकि तुम तो त्याग करके समझ बैठे कि सारा समाज प्रभावित हो गया हे। जैसे देश की 90 करोड जनता लाईन लगाकर सम्मोहित-सी तुम्हारे पीछे चला आएगी। तुम्हारा अनुसरण करेगी। वह कब से बस तुम्हारा ही इतजार कर रही थी कि अग्रवाल जी जाति त्यागे तो वे जातिसूचक शब्दो की होली जला दे।" दिवाकर जी ने उलाहना दिया।

"पर व्यक्ति के बदलने से समाज नहीं बदलता क्या? खरबूजे को देखकर ही खरबूजा रग बदलता है। दीप से ही तो दीप प्रज्वलित होते है। व्यष्टि से ही समष्टि मे परिवर्तन होता है।" मैंने अब तक जो भारी-भरकम शब्द सीखे-पढे थे, बोल दिए।

"ये किताबी बाते है, देश और जमाना आगे निकल आया है। हमारे देश का संविधान भी धर्म-निरपेक्ष ही कहलाता है। हा, स्वेच्छा से धर्म-परिवतन तो हो सकता है पर जाति-परिवर्तन नही। तुम कछुए की चाल पर जीत का भरोसा कर रहे हो। उठो, जनता जनार्दन को झकझोरो। जगाओ, सामाजिक क्रांति लाओ।"

दिवाकर जी के करट से धमनियो मे खून की जगह ओज प्रवाहित हो उठा।

बात गाठ मे अटक गयी। समाज मे चारो ओर निगाह घुमाई तो पाया कि जातिगत सम्मेलनो की बाढ आयी हुई थी। दो दिन पहले 'गूजर सम्मेलन' सपन्न हुआ था। चार दिन बाद 'ब्राह्मण सभा' का महा-अधिवेशन था। दस दिन बाद 'वैश्य कुभ' आयोजित किया जा रहा था। बहुत-सी जातियो की सभाए हो चुकी थी और जिनकी नही हो सकी थी उनकी योजनाए बन रही थीं। सभी जातिया अपने-आपको सगठित कर रही थीं। मजबूत कर रही थीं। पुष्ट कर रही थी। किसलिए और किसके विरुद्ध, यह शायद उन्हे भी मालूम न था।

इधर दिवाकर जी का इजेक्शन था कि मेरे अदर बडे जोरो से कुलबुला रहा था। सो मैं चार दिन बाद होने वाले महा-अधिवेशन के सयोजक महोदय के पास पहुच गया। सीधा अपना मन्तव्य बताया और अधिवेशन के मच से बोलने की अनुमति चाही।

उन्होंने मुझे ऊपर से नीचे तक निहारा। निरीह भाव से बोला, "भाई साहब आप हमारी एकता मे आग लगाने पर क्यो तुले हुए हैं?"

मै समझाने की मुद्रा मे आ गया, "आप मेरी बात तो समझिए। बात यह नहीं है ।"

नेता बनाम अभिनेता

बात सचमुच बहुत गभीर थी। बहुत ही गभीर। अभिनेता नेताओ के कार्यक्षेत्र मे घुसने लगे थे। सेध लगा दी थी। अवैध अतिक्रमण हो रहा था। दोनो पर हमले हुए थे। सत्तापक्ष पर भी और विपक्ष पर भी। सारे दिग्गज राजनेता सिर जोडकर बैठ गए। गहन-गभीर विचार-विमर्श प्रारभ हुआ। अनुभवी जन्मजात राजनेता ने उलाहना दिया, "देखिए, ये अभिनेतागण अपने आप तो राजनीति मे आए नही हैं। इन्हे तो लाया गया है। हमारे ही भाई-बधु है जो इन्हे घसीटकर लाए ह। अब अपनी ही करनी पर क्या पछताना।"

"जयचद कब नहीं हुए। कहा नहीं हुए। पर क्या चद जयचदो की खातिर हम सारी राजनीति को गदला होने देगे? आपने देखा नहीं एक अभिनेता भरी सभा को कैसे लूटकर ले जाता है। पुराने से पुराना अखाडेबाज भी बस टुकुर-टुकुर देखता भर रह जाता है। ऐसे कैसे चलेगी राजनीति।" यह एक उग्रवादी राजनीतिज्ञ थे।

"लूट-खसोट के लिए तो हमारे देश मे कानून है। ऐसे लुटेरे अभिनेताओ को क्यो नही पकडवा दिया जाए।" यह सुझाव एक युवा राजनीतिज्ञ का था।

"तुम अभी नये हो। नादान हो। कुछ सीखो। अगर राजनीति मे कानून को घसीटा तो कानून राजनीति पर हावी हो जाएगा।" बुजुर्ग राजनेता चहके।

"प्रश्न यह पैदा होता है कि अभिनेता आखिर राजनीति मे क्यो आना चाहते है। इनको क्या फिल्मो मे काम नहीं मिल रहा है?" एक विचारवादी राजनीतिज्ञ ने समस्या की जड पकडने की कोशिश की।

एक युवा ने तुरत ही समाधान प्रस्तुत किया, "बहुत ही स्पष्ट है। फिल्मो मे भविष्य सुरक्षित नही है। कितना भी बडा स्टार हो, बुढिया जाने पर कोई घास नहीं डालता। लेकिन राजनीति मे जितना पुराना चावल हो जाता है, उतना ही कीमती हो जाता है। फिर कोई स्टार अपनी लोकप्रियता का वोट बैंक क्यो न भुनाए।"

"क्यो जी, फिर हम ईंट का जवाब पत्थर से क्यो न दे। हम भी घुस जाते है फिल्मो मे। देखते है फिर नायक-नायिका क्या करते हैं? आजकल चुप होकर बैठने का जमाना नहीं है।" ये उग्रवादी तेवर थे।

"पर फिल्मो मे गए और फ्लॉप हो गए तब?" युवा राजनीतिज्ञ को इसकी आशका ज्यादा जच रही थी। उसकी कल्पना की रूमानी चोचबाजी मे ये घिसे-पिटे खुरदुरे चेहरे नही फिट हो रहे थे।

सभा मे कुछ क्षण मौन छा गया। युवा सभावना से किसी को एतराज न था।

"फिर हम अभिनेताओ की राजनीति को ही फ्लॉप कर देते है। तभी यह सिलसिला टूटेगा।" उग्रवादी ने नया आयाम दिया।

"फ्लॉप करती है पब्लिक, जनता। हम नहीं। और जनता उनकी पहले से ही फैन हुई बैठी रहती है। फ्लॉप करने से पहले एक बार को उन्हे सत्ता मे ले आएगी और फिर पाच साल बाद कहीं जाकर फ्लॉप होने का नबर आएगा। पाच साल क्या तुम-हम पराठे सेकेंगे।" बुजुर्ग राजनेता आश्वस्त नही हो पा रहे थे।

"और आपने फिल्मो मे ट्राई किया तो आपकी यही जनता पहले ही शो मे फ्लॉप कर देगी। तीन घटे भी नही लगेगे।" युवा नेता ने अपनी बात को पानी दिया।

"क्या फिल्मे सचमुच राजनीति से ज्यादा रोमाचक होती हैं। आखिर पब्लिक इन्हीं के पीछे इतनी दीवानी क्यो है?" बुद्धिवादी राजनीतिज्ञ ने फिर समस्या के मूल मे डुबकी लगाने की चेष्टा की।

"यह सब हमारे सेसर की कमी है जो फिल्मो को इतना दिलचस्प और भडकाऊ बनने देते है कि पब्लिक पगला जाती है। फिल्मवाले वह सब दिखाते हैं जो नही दिखाया जाना चाहिए और जनता है कि वही देखना चाहती है जो उसे नहीं देखना चाहिए। बस लट्टू हो जाती है।" अनुभवी राजनीतिज्ञ शायद सबसे ज्यादा दुखी थे।

"और इधर हम हैं कि गोपनीयता की चादर कसकर ओढे हुए हैं। हर पल यह सोचते रहते है कि कुछ लीक न हो जाए। कही से कुछ दिख न जाए। हर बात मे जनता से पर्दा बनाए है वरना हम तो वे सीन करते हैं कि फिल्मवाले सोच भी नहीं सकते। पर जब तक हम पर्दा गिराकर अपनी भव्यता और विशालता के दर्शन नहीं कराएगे तब तक जनता हम पर लोटन कबूतर कैसे होगी?" उग्रवादी ने उलाहना दिया।

"हमारे ऊपर तो कोई सेसर भी नहीं है। हम अभिनेताओ से आखिर किस बात मे कम है?" यह युवा वाणी थी।

"आदत से पूर्व परपरा से मजबूर हैं। वरना हमारे घोटाले क्या किसी फिल्मी कहानी से कम है। फर्क इतना ही तो है कि फिल्मवाले अपने फर्जी घोटालो को पर्दे पर खोल-खोलकर दिखाते हैं, उन्हे नगा कर देते हैं और हम

असली घोटाले भी दबाते रहते है, छिपाते रहते है। ऐसे मे जनता तो उसी मे से पसद करेगी न जो उसे दिखाया जाएगा। फिर अभिनेता भरी सभा लूटकर न ले जाए तो क्या करे। उन्हे लूटने कौन देता है?" उग्रवादी तैश मे था।

"आपका मतलब है कि हम अपने घोटालो को स्वय पब्लिके-आम कर दे?" व्योवृद्ध राजनेता ने आश्चर्य से पूछा।

"फिर आप देखिएगा कि जनता कैसे आपको सिर पर उठा लेता है। अभिनेता क्या लूट सकेगा आपकी सभा, आप लूट लेगे अभिनेता को भी। मुझे बताए आज कोई अभिनेता है जो हर्षद मेहता की सभा को लूटकर ले जाए?"

युवा नेता बुजुर्गवार के सवाल पर भडक गए। सभी निरुत्तर हो गए। युवा नेता की बात मे जान थी। सभी नेता समझ रहे थे कि उनमे प्रतिभा की कोइ कमी नही है। उन्ही मे ऐसे-ऐसे महान कलाकार भी मौजूद हैं जिनके सामने बडे से बड्डा स्टार अभिनेता नहीं ठहर सकता। क्या नाटकीयता, क्या रहस्य, क्या रोमाच, क्या खलनायकी, क्या अदायगी, क्या सफाई, क्या षड्यत्र–हर क्षेत्र मे दो कदम क्या, दस-दस कदम आगे हैं लेकिन मुसीबत यह है कि ये अभिनेता अपना कौशल पर्दे के आगे दिखा रहे है और उनकी मजबूरी कि उन्हे पर्दे के पीछे रहना पड रहा है और उस पर तुर्रा यह कि अपनी उत्कष्ट कलाकारी दिखाने के लिए पर्दे के आगे भी नही आ सकते।

मौन सत्ताभोगी राजनीतिज्ञ ने ही तोडा "भाइयो, हालात का तकाजा समझो। अब अपना पर्दा तो उठाया नहीं जा सकता। हा, अभिनेताओ की कारगुजारियो पर पर्दा डाला जा सकता है। इस दिशा मे सही प्रयास होने चाहिए तभी अभिनेताओ की अवैध लूट-खसोट से बचा जा सकता है।"

अत गहन गभीर विचार-विमर्श के बाद इस सर्वदलीय अखिल भारतीय राजनीतिज्ञो की सभा मे सर्वसम्मति से दो प्रस्ताव पारित किए गए–

□ फिल्मो की दिन-रात बढती लोकप्रियता को घटाने के लिए उसमे वह सभी कुछ सेसर कर दिया जाए जिसे जनता पसद करेती है। इस उद्देश्य से सेसर को और कडा किया जाए। सेसर बोर्ड को कडे निर्देश दिए जाए कि ऐसे सभी सीनो पर निर्दयता से कैची चला दे जो जनता को आकर्षित करते हैं। इसके लिए वह 'अश्लील', मारधाड, हिसा जैसे चालू शब्दो की ओट ले सकता है। यदि वर्तमान सेसर बोर्ड इसके लिए पूर्ण सक्षम न हो तो उसका पुनर्गठन कर दिया जाना चाहिए।

□ भारतीय राजनीति एव राजनीतिज्ञो को अधिक लोकप्रिय और रोमाचक बनाने के लिए बडे-बडे राजनीतिज्ञो से सबंधित छोटे-छोटे घोटालो का समय-समय पर भडाफोड किया जाना चाहिए। उनके जिक्र को लबे-से-लबे समय तक खींचा जाना चाहिए। उसके छोटे-से-छोटे रहस्यो पर से इस तरह से

पर्दा उठाना चाहिए जैसे कोई कैबरे डासर एक-एक करके कपडे उतारती है और अत मे किसी कतज्ञ आयोग से सभी रहस्यो पर कपडा डलवा देना चाहिए। इसका क्रम अनवरत रूप से इस प्रकार चलना चाहिए कि सबधित राजनेता या राजनेताओ की लोकप्रियता मे कभी भी गिरावट न आ सके। उनका नाम और मुद्राए निरतर समाचार-पत्रो की सुर्खियो मे बनी रहे। सवाददाता दुत्कारे जाने पर भी उसके चारो ओर ही डोलते रहने को विवश हो जाए।

और अब भारतीय राजनीति अपने इस सर्वसम्मत निर्णय के प्रकाश मे दिशाहीन होकर भटक नहीं रही है। वह जनता-जनार्दन को अश्लील फिल्मी टैक्स-शुदा मनोरजन से परहेज करा कर, शालीन, टैक्स-फ्री राजनैतिक मनोरजन प्रदान करने को निरतर प्रयासरत है।

वोट-बैंक

मैंने सभी राष्ट्रीयकृत बैको की सूची छान मारी थी, लेकिन मुझे वोट-बक के पते का उल्लेख कहीं न मिल सका था। ममाचारो मे इन दिनो वोट-बैक सुर्खियो मे चल रहा था, सो मैने इस बार इसी बहुचर्चित बैक से 'डील' करने की ठानी थी, पर बहुत कोशिशो पर मुझे इसकी किसी प्रामाणिक शाखा का पता-ठिकाना नही मिल पा रहा था।

जिस वोट-बैक ने अपने देश के सारे नेताओ और सारी राजनैतिक पार्टियो को अपनी अगुलियो पर नचा रखा हो उसी का अता-पता और अस्तित्व ढूढने पर भी न मिल पाए, यह एक गभीर समस्या थी, अत इसे हमने एक बुद्धिजावी मित्र के सामने परोस दी।

सुनकर मित्रवर दो मिनट तक हसते रहे, मानो मेरी बुद्धि पर तरस खा रहे हो। फिर गभीरता से मेरी आखो मे झाककर देखा कि कही मै मजाक तो नहीं कर रहा। फिर घोषणा कर दी, "तुम वोट-बैक से डील नही कर सकते।"

"क्यो? मुझमे क्या कमी है?" मै अचकचा गया।

"क्या तुम अनुसूचित जाति या जनजाति के हो?" उन्होंने प्रश्न दागा।

"नहीं तो।"

"तो क्या मुस्लिम सप्रदाय के हो?" अगला प्रश्न था।

"नहीं।"

"तो फिर तुम्हे वोट-बैक से क्या लेना-देना। अखिल भारतीय स्तर के तो यही दो प्रसिद्ध एव पुराने वोट-बैंक हैं, जिनमे तुम्हारा खाता खुल ही नहीं सकता।" बुद्धिवादी मित्र ने जैसे बहुत सरल भाषा मे हमे सब कुछ समझा दिया था।

लेकिन हमने भी अपने देश का सॅविधान पढ रखा था इसलिए रुका नहीं गया "यह तो सरासर देश के सविधान के विपरीत है कि अपने देश मे कोई ऐसा भी बैक हो जो किसी खास जाति या सप्रदाय विशेष से 'डील' करे।"

"नहीं, आप अपना नया वोट-बैंक खोल सकते है। स्थानीय और प्रादेशिक स्तरो पर अनेक नेताओ और अनेक जातियो के वोट-बैंक खुले है। अपने देश मे इसकी खुली छूट है।" मित्रवर ने हमारी जिज्ञासा शात की।

"पर इसका कुछ अता-पता तो बनाइए?" हमारा मूल प्रश्न अभी तक अनुत्तरित था।

"इनका पता आपको नेताओ और उनके कार्यकताओ से प्राप्त होगा। वही इसका सचालन करते ह आर वही इसका हिसाब-किताब रखते ह।" बुद्धिजीवी न हमे फिर भूल-भुलया मे डाल दिया। सीधे-सच्चे उत्तर से बुद्धिजीवियो का शायद जन्मजात का बर होता है।

मैंने फिर सीधा सवाल किया-"पहेलिया न बुझाइए। मुझे तो सिर्फ एक वोट-बक का पता बता दाजिए, जहा मै अपनी रकम डिपोजिट करा सकू।"

मित्रवर फिर टहाका मारकर हसे "वोट-बक नोटो से नहीं वोटो से 'डील' करते ह।"

"पर वोट तो चुनाव के समय दी जाती है, बेलेट बॉक्स मे।"

"जी हा वहा वोटे इन बेको मे सालो-साल डिपोजिट होती रहती है जो चुनाव के समय इन बको से निकालकर बेलेट बॉक्स मे डाल दी जाती हे।" बुद्धिजीवी ने ओर स्पष्ट किया।

"पर कोइ डिपोजिटर अपनी वोट चुनाव से पहले ही बैक से वापस लेना चाहे तो?" मेरे जिज्ञासु मस्तिष्क मे प्रश्न उभर रहे थे।

इस प्रश्न पर मित्रवर कुछ खो-से गए। फिर सोचते हुए बोले "ले तो सकता ह पर इसके लिए उसे उस नेता के कोप का भाजन बनना पडेगा जिसके खाने मे उसकी वोट जमा की गयी थी।'

"यानी वोट-बेक मे डिपोजिट भी अपने खाते मे नही, किसी नेता के खाते मे किया जाता ह।" इस बार चोकने की हमारी बारी थी।

"नहीं किसी कायकता या किसी पार्टी के खाते मे भी डिपोजिट करा सकते हो।" बुद्धिजावी हमारे चोकने पर मुसकरा रहे थे।

"लेकिन अपने खाते मे जमा नही करा सकते ओर वापस लेने पर कोप भी सहना होता है।" बैंक की यह अनोखी रहस्यात्मक कार्यविधि अभी पूरी तरह अपने पल्ले नही पड रही थी।

"अब आप ठीक समझ रहे हैं।" मित्रवर ने सतोष की सास ली।

"पर यह तो सरामर मुठमर्दी हुई। वोट हमारी है। हमारी राय पर निर्भर ह। वह समय-समय पर बदल भी सकती है।" हम अभी तक भी नासमझ थे।

"वोट-बैंक ऐसे ढुलमुल राय वालो के लिए नही होते। वहा तो पुख्ता राय वाले ही अपना जमा-खर्च रखते हैं।" मित्रवर ने शका समाधान की।

"यानी वोट-बैक मे करट खाता नहीं खुलता, केवल 'फिक्स-डिपोजिट' होता है।" हम उनकी बात को इसी प्रकार समझ पाए थे। मित्रवर ने स्वीकृति मे सिर हिलाया।

लेकिन प्रश्न थे कि हमारे उर्वर मस्तिष्क मे मशरूम की तरह पैदा हो रहे थे "फिर तो सूद भी ज्यादा मिलता होगा?"

"क्यो नही, पर सूद नेता की साख पर निर्भर करता है। शराब की बोतले कोटा परमिट, लाइसेस, मनचाही पोस्टिग बच्चो के दाखिले थाने की कपादृष्टि ओर कभी-कभी तो सरकारी नौकरी तक सूद मे लोग झटक लेते ह।"

विविध प्रकार के इन सूदो का नाम सुनकर हमारे मुह मे भी पानी आ गया। मित्र के और निकट सरकते हुए मुह से निकल ही गया "क्या सूद मे चुनाव का टिकट भी मिल सकता है?"

बुद्धिवादी के चेहरे पर रहस्यमय मुसकान खेल गयी "क्यो नहीं, क्यो नहीं पर इसके लिए केवल अपने डिपोजिट से काम नहीं चलेगा। सारे घरवाले रिश्तेदार, नातेदार, मित्र बिरादरीवाले जातिवाले और प्रभाव-क्षेत्र के डिपोजिट इकट्ठे करके लाने होगे और उनकी कम-से-कम छ अको मे सख्या करके शीषस्थ नेताओ को प्रभावित करना होगा।"

वोट-बैक का रहस्य अब हम पर खुलने लगा था लेकिन एक शका फिर भा सिर उठा रही थी "पर मैने समाचारपत्रो मे पढा है कि वोट-बैंक बहुत जल्दी टूटते और बनते रहते है।"

"यह रिस्क तो है। एक अनुसूचित जाति का वोट-बेक सिफ इसलिए टूट गया, क्योंकि उसके एक नेता अपने एक घंटे के भाषण मे डॉ० अम्बेडकर का नाम लेना भूल गए थे। एक और किसान नेता का वोट-बैक इसलिए सरक गया क्योंकि उन्होने मौजूदा सरकार को किसान-विरोधी करार देते हुए कुछ मोटी-मोटी गालिया नहीं दी थी। वोट-बैक टूटने और बनने के हजारो नहीं लाखो कारण हो सकते है। लेकिन जाने-माने नेता इस विषय मे बडी सावधानी और सूझ-बूझ से काम लेते है।" मित्रवर ने हमे समझाया था।

वोट-बैंक अब शायद कुछ-कुछ अपनी समझ मे आने लगा था। इसलिए एक अतिम प्रश्न मैने और पूछ डाला "अगर मैं अपना ही वोट-बैंक खोल लू तो?"

"क्यों नही। वित्त मत्री डॉ० मनमोहन सिह ने निजी क्षेत्रो मे बैंक खोलने की खुली छूट दे दी हे। अब आपको कौन रोक सकता है। किसी वोट-बैक का पता ढूढने के झझट से भी बच जाओगे।"

"पर निजी क्षेत्रो के बैको के लिए तो सौ करोड की धनराशि जुटाना अनिवार्य है।"

"वोट-बैंक के लिए छह अको की वोटो से ही काम चल जाएगा। इतनी वोटो से तुम राजनैतिक सौदेबाजी कर सकोगे।" कहकर मित्रवर ने पूर्ण आश्वासन से मेरी पीठ ठोक दी।

हमने अगुलियो पर छह अको को गिना तो गिनती बस लाखो पर जाकर रुक गइ। नब्बे करोड की जनता मे लाख। यानी नौ सौ मे से एक आदमी। क्या हम नो सौ मे स एक आदमी को भी बेवकूफ नही बना सकते। हमारे हामले बुलद हो गए। हमे लगा कि वोट-बैक तो चुटकी बजाते ही खोला जा सकता है।

आर मैंने अपने सयुक्त परिवार की ग्यारह वोटो का सुदृढ नींव पर एक नये वोट-बैक का आधारशिला रख दी है। मेरी योजना है कि इसे अपने मोहल्ले वाड नगर जिले एव प्रदेश से गुजारता हुआ राष्ट्रीय, और यदि सभव हुआ नो अतराष्ट्रीय स्तर तक ले जाऊगा।

हाय रे नुकसान ! वाह रे नुकसान !

न मे जो बात पानी पिला-पिलाकर मारती है, वह है-घर बैठे-बिठाए का सान। यह कमबख्त कही भी हो जाता है, कभी भी हो जाता है, किसी को हो जाता है, कैसे भी हो जाता है। मुसीबत तो यह है कि यह नफा होने पहले भी हो जाता है। नफे को हाथ मे आने से पहले ही फिसला ले जाता बधी मुट्‌ठी से बालू के रेत की तरह।

रामलाल वर्मा ने अपने इकलौते चश्मोचिराग को विदेश मे पढाया। दिल लकर परवरिश की। दोनो हाथो से खर्चा किया। तराश-तराशकर हीरा बना या। दाम निकल आए। जौहरियो ने पहचाना और दरवाजे पर दस्तक देने लगे। ठ दमडीमल अपनी कन्या के लिए दस लाख खर्च करने को तैयार थे। सेठ रामल ऐसे सुयोग्य और सुशील वर को बारह पेटियो मे भी सस्ता समझ रहे । वर्मा जी ने मोटा-मोटा हिसाब फैलाया पाच सौ प्रतिशत का नफा था। बाछे खल गयी। उसी वर्ष लडका छुट्टियो मे घर लौटा तो आशीर्वाद के लिए वदेशी बहू सहित पावो मे झुक गया। वर्मा जी से हाथ न उठाते बना, न गराते। लगा, जैसे किसी ने दस लाख की चपत लगा दी हो। बैठे-बिठाए दस लाख का नुकसान हो गया। जिदगी भर इस नुकसान की मार से तिलमिलाते रहे, नसीबो को कोसते रहे।

चौबे जी के साथ तो और भी बुरी गुजरी। बारह बृहस्पतिवार, आठ सोमवार और चौदह मगलवार करके और ग्यारह महात्माओ से आशीर्वाद लेकर एक सौ दस रुपये का लाटरी का टिकट खरीदा था। पूरे साढे सात लाख का इनाम था। कोई शक-शुबहा ही नहीं छोडा था। चारो घर चौकस कर लिये थे। सारे शकुन-अपशकुन विचार लिये थे। पर नुकसान होना था सो होकर रहा। न जाने कौन-सी बिल्ली ने छींक दिया था कि दस रुपये वाला इनाम भी नहीं लगा। बैठे-बिठाए साढे सात लाख रुपये घट गये।

दिवाकर जी तो रोज-रोज के इस नुकसान से आजकल बहुत ही परेशान हैं। नफा ठेकेदार का रूप लेकर रोज-ब-रोज उनकी टेबिल तक आता है। बीस साल के खुर्राट अनुभव से वह एक ही नजर मे पहचान लेते हैं कि कितने की

पुडिया ह चाल-ढाल पहनना-ओढना बनाव-शृगार बोलचाल का एक-एक अंदाज उनके नफे क मात्रा निधारित करता है। ऊपर से दिवाकर जी की वाक-पटुता। आपके नफ को भी पकाकर रख दे। पर हाय रे बॉस। उनके कमरे मे एक बार जो घुस जाता ह पलटकर ही नहीं आता। पिछले दस महीनो मे बॉस दिवाकर जी को साढ बासठ हजार रुपये की चोट दे चुके है। ऐसा ही चलता रहा तो हो ली सरकारी नाकरी। कोई कब तक नुकसान उठाएगा जी।

लेकिन आदमी कितना मजबूर है कोई यह सेठ छगनीमल से पूछे। नामी स्टॉक-ब्रोकर दम्बे जी ने टिप दी था 'पाताल-लोक' का शेयर साढे सात हजार की ऊचाइ छुएगा। सेठ छगनीमल कैसे पीछे रह जाते। पूरे दो करोड अडा दिए। पर शेयर था कि छ हजार पर जाकर अटक गया, उठने का नाम ही न ले। हर्षद मेहता काड जो हो गया था। बारह करोड का मुनाफा तीन करोड मे सिमटकर रह गया। इस नौ करोड के भारी-भरकम नुकसान पर सेठ जी को नौ दिन नीद न आयी थी। नीद की गोलिया भी बेअसर हो गयी थीं।

बीच चौराहे पर एक्सीडेट हुआ था। कार ने पीछे से स्कूटर को ठोक दिया था। ड्यूटी पर तैनात सिपाही लपक लिया। उसके जेहन मे कम-से-कम सौ का नोट बना था। भीड इकट्ठी होने लगी थी। पर कार चालक डी० एस० पी० साहब के साले का भी साला निकला। भीड को धकियाकर सिपाही मन मसोस-कर लौटा आया। उसका आया-अवाया नीला नोट हाथ से निकल गया था। रात को सिपाही ने बीस रुपये का अद्धा पीकर गम गलत किया तब जाकर इस नुकसान की कुछ भरपायी हो सकी।

और गेंदामल के केस मे तो इस नुकसान ने श्रीमती जी के उलाहने की भी परवाह नही की। 'आज तक एक साडी तो अपनी कमाइ की बनवा नही सके' के व्यग्य-बाण ने जो उनका पौरुष खौलाया तो सीधे ताश की चौकडी मे जा बैठे। मन-ही-मन प्रण किया कि आज बावन पत्तो से पूरे छ सौ रुपये लेकर ही उठूगा और श्रीमती जी के लिए मनभावनी साडी लाकर उस जानलेवा उलाहने को हमेशा-हमेशा के लिए धो दूगा। पर दिन क्या सारी रात भी लग गयी–पर दो सौ से ज्यादा न बन पाए। पत्ता आ-आकर भी लौट जाता। चार सौ रुपये के लगभग नुकसान बराबर ही बना रहा और हार-थककर अगली सुबह इस नुकसान मे ही उठना पडा। न किस्मत ने शरम की और न ही पत्तो ने।

अरे, आदमी तो आदमी सरकार को भी नहीं माफ करता यह नुकसान। पिछले वर्ष एक सरकारी बजट मे आठ सौ हजार करोड रुपये के नफे का अनुमान था। इस नफे मे सुना हे दो सौ करोड रुपये का नुकसान रह गया।

लगता है यह सारा ससार दिन-रात नुकसान पर नुकसान झेले जा रहा है।

बाढ़ मंत्रालय

प्रदेश मे बाढ के व्यापक महत्त्व को स्वीकारते हुए नये मुख्यमत्री ने एक स्वतत्र 'बाढ मत्रालय' की घोषणा की थी। विपक्ष को भी अपना रोल अदा करना था सो उसने आपत्ति ठोक दी थी "प्रदेश मे नदिया ही नहीं ह तो फिर बाढ मत्रालय क्यो?" परपरानुसार सचिव बाढ मत्रालय ने स्पष्टीकरण दिया "नदी न सहा नहरे तो है। उनमे तो बाढ आ ही सकती हैं।" यह सारी सुनियोजित लोकतात्रिक व्यवस्था सुचारू रूप से सपन्न हो जाती किंतु इसकी अबाध प्रक्रिया मे कोई छीक गया। छह महीने बीतने पर भी प्रदेश मे कही कोइ बाढ नहीं आयी। शायद बाढ मत्रालय की स्थापना से रुष्ट हो बाढ ने ही हडताल कर दी थी।

छह महीने बीतते-बीतते सचिवालय मे कानाफूसी प्रारभ हो गया। बाढ मत्रालय के वरिष्ठ अधिकारियो की मौज-मस्ती और आरामतलबी सहयोगी विभागो को फूटी आख भी नहीं भा रही थी। कोई काम न धाम और ठाट पूरे। मरोड मे कोई कमी नही। उनकी अफसरानी ईर्ष्या जाग उठी। बाढ मत्रालय पर अगुलिया उठायी जाने लगी तो बाढ सचिव भी तद्रा से जागे। हालात का जायजा लिया और लबे खुर्राट अनुभव के बल पर बाढ की हडताल तुडवाने की ओर अग्रसर हुए।

प्रदेश की नहरो के किनारे बसे गेस्ट-हाउस वाले शहरो का व्यापक दौरा तैयार किया गया। परिवार को पिकनिक के लिए राजी किया गया साली और सलहजो को प्यार और मनुहार से आमंत्रित किया गया और निकल पडे बाढ मत्रालय की आबरू बचाने।

सारा बाढ मत्रालय छह महीने बाद ऐसा जागा जैसे कुभकरण उठ बैठा हो। प्रदेश-भर के दफ्तरो मे रगाई-पुताई होने लगी। फाईल-कवरो की धूल झाड दी गई। कर्मचारियो मे चुस्ती आ गयी, फुर्ती आ गयी और दायित्व-बोध न केवल पैदा हो गया वरन् तुरत जवान भी हो गया। प्राइवेट धधे कुछ दिनो के लिए स्थगित कर दिए गए और दफ्तरो मे नियमित उपस्थिति भरी जाने लगी।

विभाग का हर कमचारी जिज्ञासु था कि देखे तो उनके महाअनुभवी सचिव महोदय बाढ का हडताल कैसे तुडवाते है।

लगभग एक माह के व्यापक दौरे के बाद सचिव महोदय वापस मुख्यालय लौट आए। घर-परिवार और साली-सलहजे बहुत प्रसन्न थी। पिकनिक बहुत सफल रहा था। उन्होने रिपोर्ट बनाइ–'निकट भविष्य मे भयकर बाढ की आशका है यदि बचाव के सभी कदम तुरत युद्ध-स्तर पर नही उठाए गए तो भारी विनाश को नहा रोका जा सकेगा।'

रिपोर्ट अत्यत महत्त्वपूर्ण थी साथ ही गोपनीय भी। अगर कही बाढ को लीक हो जाती तो वह समय से पहले आ जाती। या फिर आना ही स्थगित कर देती। सारा तैयारिया धरा-की-धरी रह जातीं। अत सचिव महोदय स्वय इसे लेकर मत्री महोदय के सम्मुख उपस्थित हुए। पढकर मत्री महोदय प्रश्नाकार बन गए। मत्रालय नया था अत इसकी योजनाओ का पूर्वानुभव न था। सचिव महोदय ने सुझाया 'सर, हालात बहुत गभीर है। आपको तुरत मुख्यमत्री से वार्ता करनी चाहिए। वह केद्रीय सरकार मे पता लगाए कि प्रदेश को इस सभावित विनाश से बचाने के लिए कितना अनुदान प्राप्त कर सकेगे। तभी मै अनुमानित बजट बना सकूगा।''

मत्रालय जरूर नया था पर मत्री महोदय पुराने थे। अनुभवी खिलाडी थे। खेले-खाए थे। उन्होने सचिव महोदय की प्रदेश-चिता के विराट महत्त्व को भापा आका सराहा और मुख्यमत्री की ओर दौड लिये।

छह महाने पहले बोए मत्रालय पर फल लगते देख मुख्यमत्री जी सचेत हो गए। बाढ कैसे आ रही है किधर से आ रही है, क्यो आ रही है, कौन ला रहा है आदि निरथक प्रश्नो से उनको कोई सरोकार न था। जो आम खाने मे विश्वास रखते है वे भला पेड क्यो गिने। उनका कर्तव्य था आती हुई बाढ को रोकना। उसकी विनाशलीला से देश-प्रदेश की रक्षा करना। जनता के जान-माल की हिफाजत करना। उनकी धमनियो मे दायित्व-ओज बहने लगा। तुरत प्रेस काफ्रेस बुलवाइ गई और प्रदेश के सीमित अल्प साधनो से चार सौ करोड की धनराशि बाढ मे झोकने की घोषणा कर दी। साथ ही केद्र से छह सौ करोड का सहायता राशि की मागे पेश कर दी गयी।

सभावित बाढ नियत्रण की युद्ध स्तरीय कार्यवाहिया चालू हो गईं। अब यह फाइल सरकार की सबसे महत्त्वपूर्ण फाइल हो गई थी जो मुख्यमत्री, बाढ मत्री और बाढ सचिव से ही दिन-रात चिपटी रहती थी। इससे नीचे यह फाइल उतरना जानती ही न थी। आखिर को अब यह पूरी एक हजार करोड की फाइल जो बन गई थी।

मुख्यमत्री जी से आजकल केद्र के मधुर सबध न थे। छत्तीस का आकडा चल रहा था। अत केद्र सीधे-सीधे न कोई सहायता राशि देने वाला था और

कोई अनुदान। उसने गभीर होकर दो बिदुओ पर विस्तत रिपोट माग ल–
बाढ से कितना जन-जीवन प्रभावित होगा? (2) यह बाढ उसका कितन
र बहाकर ले जा सकती है? सर्वज्ञानी बाढ सचिव को बाढ का तरह इन
नो का भी पूर्वानुमान था। वह पहले से ही पूरी तैयारी मे थे। उन्होंने तुरत
र पठाया (1) एक लाख करोड की विनाशलीला सभावित ह। (2) पूरे
ह सासद बहाकर ले जा सकती है।

केद्र पर व्यापक वाँछित प्रतिक्रिया हुई। दूरदर्शन पर बाढ सहायता कोष
लने की घोषणा कर दी गई और हैलीकॉप्टर को सभावित आपातकालीन
डान के लिए तैयार खडे रहने के आदेश प्रसारित कर दिए गए।

किंतु सभावित बाढ थी कि उसका अभी भी कहीं कोइ पता-ठिकाना नजर
नीं आ रहा था। उसकी हडताल बाजाब्ता जारी थी।

इधर बाढ सचिव निरतर चितातुर थे। समय के साथ-साथ दुबलाए जा रहे
। दौरा उन्होंने किया था। बाढ को आते हुए भी उन्होंने ही देखा था। उसको
मने की जिम्मेदारी भी उनकी ही थी। अगर तैयारियो से पहले ही आ गयो
सारा मत्रालय ही बहाकर ले जाएगी। अत बाढ नियत्रण कक्षो की विस्तृत
जना तैयार कर दी गई। दो सौ करोड का नावो का ठेका छोड दिया गया।
स और मीडिया को आवश्यक हिदायते दे दी गयीं। फोटोग्राफरो का चयन कर
लया गया और बाढ की चपेट मे आनेवाले लोगो की भोजन व्यवस्था सुदृढ
र दी गई। कही कोई चूक न रह जाए इसलिए बाढ नियत्रण कक्षो की काय-
णाली की देखरेख के लिए एक उच्च स्तरीय समिति का गठन भी कर दिया
ाया। नावो का ठेका जिसे दिया गया, वह मुख्यमत्री का जिगरी था। भोजन का
व्यवस्था जिसने सभाली थी, वह पिछले दो साल से बाढ मत्री के घर के चक्कर
लगा रहा था। जूते उठाने से लेकर तेल की मालिश तक करता था। हा बाढ
सचिव का कोई अपना न था। उनकी गीता के श्लोक मे पूर्ण आस्था थी–
'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्'। इस युद्धस्तरीय बचाव में जो धन का
सदुपयोग हुआ, उसमे मुख्यमत्री और बाढ मत्री तो क्या सारे प्रदेश मंत्रिमडल
की सिफारिशे छक गयीं। सभी गगा नहा लिये। जन प्रतिनिधियो ने जी भरकर
जन-अनुग्रह धोए। कई मंत्रियो के निर्वाचन क्षेत्र निश्चित हो गए। गढ सुदृढ हो
गए। विधायको ने अपना आगामी निर्वाचन सुरक्षित कर लिया। बाढ सचिव की
सर्वत्र प्रशसा होने लगी।

लेकिन बाढ फिर भी नहीं आयी।

हार-थककर बाढ सचिव ने सिचाई सचिव को सपरिवार रात्रि-भोज पर
आमंत्रित किया। एक वरिष्ठ सहयोगी के निमत्रण को ठुकराने का कोइ प्रश्न ही
न था। बडे अनौपचारिक परिवेश मे यह रात्रि-भोज मथर गति से बढ निकला।

सोफ्ट और हाड ड्रिक्स के बीच पहले पारिवारिक चर्चा हुई फिर प्रादेशिक हालात समझे-बूझे गए। फिर राजनैतिक समझ का आदान-प्रदान हुआ और फिर प्रशासन्कि उठा-पटक को नापा-तोला गया। इस प्रकार वार्ता का यह क्रम जब अनापचारिक्ता' की सीमाए लाघता हुआ गाली-गलौज की आत्मीयता पर उतर आया तो बाढ सचिव ने उलाहना दिया-'बाधो का पानी इस बार किसी को दहेज मे देना ह क्या? इकट्ठा ही करे चले जा रहे हो।'

"तुम्हे चाहिए तो तुम ले लो। मुझे क्या अचार डालना है।" सिचाई सचिव भी बहक रहे थे।

"तुम छोडोग तभी तो लूगा न। तुम्हारे जी से तो छूट ही नही रहा ह। साप की तरह कुडली मारकर बैठे हो।"

"तुम भी क्या याद रखोगे किस यार से पाला पडा है। तुम्हे दिया और सारा का सारा दिया।" सिचाई सचिव अपने वरिष्ठ सहयोगी पर न्योछावर हो गए।

समझदार आदमी वह जो खतरे को जागते हुए झेले, सोते हुए नहीं। बाढ को निश्चित उपयुक्त समय पर आने के लिए निमत्रित किया गया था। और सचमुच जब प्रदेश की नहरो मे बाढ आयी तो बाढ सचिव नहा-धोकर चुस्त-चौकस अपने मत्रालय मे जमे थे।

सारा कार्य रगमच के पूर्व-निर्धारित सवादो की तरह सुचारू रूप से सपन्न हुआ। बाढ निश्चित निर्धारित स्थलो पर ही आयी। हैलीकॉप्टर अविलम्ब उडा। प्रधानमत्री के बाजू मुख्यमत्री सुनिश्चित स्थान पर ही बैठे। दूरदर्शन ने पूग कवरेज दिया। बाढ आने के पाच मिनट के अदर लहलहाता हुआ पानी, डूबती बस्तिया भी खेत-खलिहान, छत और नावो पर चढे लोग तो क्या सारे सहायता कार्यक्रम तक दिखा दिए गए। प्रेस और मीडिया भी पीछे नहीं रहा। उसने मुखपृष्ठ के साथ-साथ बैक पृष्ठ तक रग दिया। चार-चार रगो का प्रयोग किया। सारे विज्ञापन अदर के पृष्ठो पर धकेल दिए गए। कुछ ने तो पूर्व मुद्रित विशेष परिशिष्ट तक निकाल डाले। यही समझ नही आ रहा था कि बाढ का रग ज्यादा है या बाढ नियत्रण का। इतनी निर्यत्रित होकर तो बाढ आज तक नहीं बही थी।

सारे देश-प्रदेश बाढ मत्रालय का लोहा मान गया। इतनी जबरदस्त सभावित विनाशलीला बाढ मत्रालय के चगुल मे कालिया साप की तरह फसी रह गयी थी। जन-जन बाढ मत्रालय का आभारी हो उठा था और बाढ सचिव की सूझ-बूझ का कायल।

सुना है, बाढ मत्रालय की इस अद्भुत, अभूतपूर्व, चहुमुखी सफलता से उत्साहित हो देश की अन्य प्रदेश सरकारे भी अब बाढ मत्रालय की स्थापना करने जा रही हैं।

अच्छा पड़ोस

श्रीमती जी की जिद थी कि अबकी बार नये किराये के मकान मे चाहे जो हो या न हो 'अच्छा पडोस' जरूर होना चाहिए। अर्धांगिनी की इच्छा के आगे हम नतमस्तक हो गए, सभी को हो जाना चाहिए। कहते है घर घरवाली से ही होता है तो फिर पडोस पडोसन से हुआ। यानी पडोसन अच्छी तो पडोस अच्छा। सो साहचर्या का भावार्थ मनन कर हम वांछित खोज मे लग गए।

प्रॉपर्टी डीलर ने जब नये मकान की सारी खूबिया विस्तार से गिनानी प्रारभ की तो हमने टोककर पूछा, "पडोस कैसा है?"

"फस्ट क्लास, अल्ट्रा मॉडर्न।" प्रॉपर्टी डीलर चहक पडा।

"मिलवा सकोगे?" मे कोई रिस्क नही लेना चाहता था।

अर्धांगिनी के कार्य मे कोताही बरतना मेरे स्वभाव से परे था।

"क्यो नहीं, आपको वहीं ठडा पिलवाऊगा।" डीलर ने आस्तीने चढा लीं।

मकान पर पहुचकर डीलर ने सुझाव दिया, 'पहले मकान देख ले, फिर पडोस।'

पर मै था समय के दुरुपयोग का सख्त दुश्मन, अत सुझाव को सशोधित कर दिया, "पहले पडोस, फिर और कुछ।"

डीलर ने पडोस की घटी दबा दी। अदर से सौंदर्य प्रतियोगिता वाली मथर गति से चलती हुई एक महिला सामने आ खडी हुई, "कहिए?"

अब भला कहने-सुनने को बचा ही क्या था। कुछ काट-छाट के साथ फिल्म की कोई नयी हीरोइन डास सीन की वेशभूषा मे मेरे सामने खडी थी। ऐसे मोको पर मेरा स्वभाव और आदत देखने की रही है कहने का नहीं। कहने की आदत को अभी डवलप करना पडेगा, इसलिए कहने की औपचारिक्ता डीलर ने निबाही, "ये आपके नये पडोसी है। एक गिलास पानी मिलेगा?"

उस महिलाश्री ने अभिनदन मे दोनो हाथ जोड दिए और रस टपकाते शब्दो मे कहा, "अदर आ जाइए।"

मै सम्मोहित-सा डीलर के साथ पीछे पीछे हो लिया। एक सजे हुए ड्राइगरूम मे हमे बैठाया गया। फिर रस टपका "आप पेप्सी लेगे या कोला?"

अव तक म शायद कुछ बोलने लायक हो चला था। शिष्टाचारवश निकला "जा पानी"

"यह भी पानी ही तो है। आप अपनी चॉयस बताए?" मै उनका तक-शक्ति का कायल हो गया।

"कुछ भी चलेगा।" बस, यही मुह से निकल सका।

वह उठीं और फ्रिज से ठडी पेप्सी खोलकर मुझे पकडा दी। मैं उनकी गतिविधियो का सूक्ष्म अन्वेषण कर रहा था। वह सामने के सोफे मे धस गई थी। उन्होंने पूछा, "आप क्या करते ह?"

मन मे आया, सच बोल दे कि झक मारते है कितु साथी डीलर की व्यावहारिक सूझ-बूझ ज्यादा थी। उसने तुरत उत्तर दिया, "बहुत बडे राइटर हे।"

"राइटर।" महिला के चेहरे पर मुस्कान खेल गई, "मुझे भी पढने का शौक है।"

गनीमत है। मुझे डर था कि वह यह न कह दे कि मुझे भी लिखने का शौक है। आज हर गली के हर तीसरे मकान मे एक राइटर है और रीडर पूरे मोहल्ले मे एक नहा मिलता। मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई कि यह सुदर्शना पाठक ही थी, लेखिका नहीं।

सभावित पडोसन का प्रथम साक्षात्कार इतना ही पर्याप्त था। शादी से पूर्व भावी धर्मपत्नी से साक्षात्कार की भी इससे ज्यादा अनुमति नही मिली थी। मान-मर्यादा आडे आ गइ थी। इतने से साक्षात्कार मे हमने भावी धर्मपत्नी को पास कर दिया था तो फिर भावी पडोसन को क्यो नहीं पास किया जा सकता था। पडोसन शत-प्रतिशत अको मे उत्तीर्ण हुई थी। बाहर निकलकर प्रॉपर्टी डीलर ने पूछा "अब मकान देख लिया जाए?"

"कोइ जरूरत नहीं है। मुझे मकान पसद है।" मैंने अपना निर्णय सुना दिया। डीलर ने अवाक हो मुझे निहारा। अब वह बेचारा क्या समझता और कैसे समझता कि मे अपनी श्रीमती जी का कितना आज्ञाकारी हू।

अगले रविवार से पहले ही मैने अपनी श्रीमती जी को उनके चिर-प्रतीक्षित अच्छे पडोस वाले नवगृह मे प्रवेश करा दिया।

अगले तीन दिन मै अपने कानो मे रुई ठूसे रहा। श्रीमती जी की बडबडाहट, उठक-पटक और हाथ-पेरो की उछाल और रौद्र मुखमुद्रा ने मुझे आभास कराया था कि मेरी धर्मपत्नी को अच्छे पडोस की अभिलाषा मे इस नवगृह मे बहुत कुछ त्याग करना पड रहा था। लेकिन मैं तो कथाकार था। अच्छे पडोस के क्लाईमेक्स पर भरोसा करके सारा कथा-सूत्र दाव पर लगा बैठा था।

कही क्लाईमेक्स से पहले ही कहानी बद न हो जाए, इस डर से मैंने अर्धांगिनी को पडोस से परिचित करने की औपचारिकता निभाने का प्रस्ताव रखा, जो सहर्ष स्वीकृत हुआ।

घर से निकलने से पूर्व मैंने कानो मे ठूसी हुइ रुई निकाल दी थी और एक लिफाफे मे अपनी ताजा लिखी पुस्तक छिपा ली थी। मेरी कल्पना मे यह दोनो बाते वांछित थीं।

कॉलबैल दबाते ही वही सुदर्शना अवतरित हुईं। मुझे देखते हा होठो पर मुसकान खेल गई, "अरे, आप! आइए, आइए अदर आइए।"

हमने अदर प्रवेश किया। सहचरी तीखी निगाहो से नयी पडोसन को देख रही थीं। उनकी भृकुटी पर बल आ गए थे। हमने तपाक से परिचय कराया, "यह मेरी धर्मपत्नी है।"

"नमस्कार. बैठिए न। कब शिफ्ट किया?"

पडोसन के हर शब्द मे मिसरी घुली थी। उनका शिष्टाचार टी वी सीरियल के कुशलतम शिष्टाचारो को मात दे रहा था।

जब तक श्रीमती जी की भृकुटी न गिर जाए, बातो का सूत्र मैंने अपने ही हाथ मे रखना श्रेयस्कर समझा था। अत उत्तर दिया, "अभी तीन दिन पहले ही आए है। गृहस्थ के सामान को यथास्थान लगाने मे ही इनका सारा समय निकल गया। इससे पहले आपकी ओर न आ सके।"

"लगता है आपका स्वेटर तो भाभी जी ने अपने हाथो से बुना है। बडी अच्छी बुनाई डाली है।"

कहकर उस रूपमयी ने मेरे स्वेटर पर हाथ डाल दिया। गिरती भृकुटी फिर तन गई।

मैंने हालात की नजाकत को पहचाना। खतरे का आभास पाया और सुरक्षात्मक हो चला, "मेरी श्रीमती हस्तकला मे सिद्धहस्त हैं।"

"एक साहित्यकार और एक कलाकार। क्या जोडी है! आपके तो ठाट हैं, भाभी जी।"

सुदर्शना मेरा स्वेटर छोडकर श्रीमती जी की ओर मुखातिब हो गई थीं। मैंने सतोष की सास ली। कुछ भी कहो, नयी पडोसन मृदुभाषिणी ही नही, व्यवहार-कुशल भी थीं। श्रीमती जी के माथे के बल धीरे-धीरे गायब हो गए थे। अत अब वार्ता-सूत्र उन्हीं के हाथो मे चले जाना उचित था। मै नहीं जान पाया कि यह सूत्र कब और कैसे श्रीमती जी को सारे मकान मे घुमाने के साथ-साथ किचन का विस्तार से परिचय भी करा लाया था। फलस्वरूप जब हम अच्छे पडोस से औपचारिक विदा ले रहे थे तो श्रीमती जी के हाथ पडोसन के हाथो मे थे और होठो पर सतोषजनक मुसकान खेल रही थी। मैंने मौका चूकना ठीक

नहीं समझा। मौका-ए-गनीमत समझ अपना छिपाया हुआ व्यग्य-सग्रह अच्छे पडोस के हाथ मे थमा दिया। मुह से निकला, "पढकर सुझाव जरूर दीजिएगा।"

"ओह! श्योर! थैंक यू। आई विल लव टू।" प्रियदर्शनी औपचारिकता निभाने मे किसी से पीछे नहीं थी।

घर लौटकर हमारी धर्मपत्नी ने हमे आडे हाथो लिया, "आपको अपना व्यग्य-सग्रह उसे देने की क्या जरूरत थी?"

"अरे भई वह पाठक है। उसे पढने मे रुचि है।" हमने बचाव किया।

"तो अब आप हर पाठक को अपनी पुस्तक बांटेंगे?" श्रीमती जी उफनीं।

"वह 'हर' तो नहीं है। हमारी नई पडोसन है।" हमने स्पष्टीकरण पेश किया।

"यही तो मै भी कह रही हू कि वह 'हर' नही है, 'वो' है। इसलिए आपको सावधान कर रही हू, समझे। आगे से यह किताबी लेन-देन नही चलेगा।"

श्रीमती जी हमे सावधान कर रही थीं और स्वय अति सावधान हो चुकी थी।

बात आयी-गयी हो गई। हमे सतोष था कि हमने श्रीमती जी की अभिलाषा-पूर्ति के लिए एक अच्छा पडोस ढूढ ही लिया था। अब 'शक' की दवा तो लुकमान हकीम पर भी नही मिली थी। लुकमान साहब का ही अकेले क्या दोष! आज के एम० डी० और डी० डी० भी इसका इलाज नहीं खोज पाए है। औरो को तो छोडिए, बडे-बडे डॉक्टर भी इस लाइलाज मर्ज पर अपना घर बरबाद किए बैठे है। एक बार बस यह 'शक' की बीमारी लगने भर दीजिए, फिर तो अच्छे-से-अच्छा डॉक्टर भी बस टुकुर-टुकुर देखता भर रह जाता है। कुछ कर नही पाता। फिर हमारी तो हस्ती ही क्या थी।

और शक भी भला क्यो न हो। चुबक लोहे को नही खीचेगा तो क्या पत्थर को खीचेगा! पडोसन का आकर्षण इस कदर बढ चला था कि धीरे-धीरे मेरे घर की हर पुस्तक पडोस मे पहुचनी प्रारभ हो गई। रेफरेस के लिए भी लाइब्रेरी की तरह पडोस मे जाना पडता था। मूल्य के रूप मे वसूल हो रही थी केवल मुस्कान। और मै था कि तन्मन्यता से पूरा-पूरा मूल्य वसूलने पर आमादा था। यह सब श्रीमती जी भी देखभाल रही थीं। वह शकालु से ईर्ष्यालु हो उठी। जितना समय खाने-पीने और घर की देखभाल करने मे लगाती थीं, अब उतना ही समय मेरी चौकसी पर खर्च करने लगीं। मेरा घर से निकलना भी अब उन्हे अखरने लगा और अखरता भी क्यो नही चाहे कहीं भी जाना हो, मेरे कदम पडोस मे एक चक्कर जरूरी डाल आते थे।

पर मेरी श्रीमती जी भी कुछ कम पैंतरेबाज नहीं थी। आखिर थी तो मेरी ही धर्मपत्नी। मेरे लबे सान्निध्य का दुष्परिणाम यह हुआ कि उन्होंने इस समस्या

का निदान अपने ही ढग से निकाल लिया। मैंने अचानक पाया कि अब वह स्वय अपना अधिकाश समय मेरी पडोसन पर लगाने लगी हैं। बस जरूरी घरेलू काम निबटाए और पडोस मे पहुच गईं। मै अच्छे पडोस से अच्छा परिचय ही कर सका था, श्रीमती जी ने अच्छी मित्रता कर ली थी। जो थोडी-बहुत किताबे मेरे पास बाकी रह गई थीं, वह उन्हे बडी उदारतापूर्वक स्वय पडोसन को दे आयी। मुसकान का मूल्य भी स्वय वसूल कर लिया। मै गभीर टोटे मे आ गया था।

मुझे इस स्थिति से भी शायद ही परहेज होता, आखिर अच्छा पडोस मैंने श्रीमती जी की अभिलाषा के लिए ही चुना था। पर मेरा माथा तो तब ठनका जब मेरी धर्मपत्नी ने एक रोज मुह बनाकर कहा–"तुमने पडोस के किचन मे माइक्रोवेव ओवन देखी? कितनी जल्दी खाना बनाती है, कितना गर्म, कितना स्वादिष्ट।"

मै सकते मे आ गया। अच्छे पडोस का यह सत्सग-लाभ मेरी कल्पना से बाहर था। मैंने सचेत किया, "भाग्यवान, माइक्रोवेव ओवन तो 25,000 रुपये की आती है। मै ठहरा मीडियम क्लास आदमी। माइक्रोवेव ओवन तो अमीरो के चोचले है, अमीरो के।"

"तो क्या हुआ? जैसा देश–वैसा वेश, इतने अच्छे पडोस के मापदडो के अनुरूप तो रहना ही होगा न।"

मै निरुत्तर हो गया। अपने बैकखाते से 25,000 रुपये डेबिट होने को नहीं रोक सका। बात यहीं थम जाती तो शायद सतोष कर लेता कि अच्छे पडोस की कीमत सहअस्तित्व के सिद्धात पर पति-पत्नी दोनो ने ही चुका दी है, लेकिन चार दिन बाद ही जब पडोसन की भव्य काजीवरम की साडी पर उलाहना मिला तो मै तिलमिला गया। पडोस धर्म निबाहने के लिए काजीवरम पर 12,000 रुपये का त्याग मेरी सहनशीलता की सीमाओ का अतिक्रमण कर रहा था। लेकिन मेरी अर्धांगिनी थीं कि अच्छे पडोस मे इतनी रच-बस गई थीं कि वह डूबकर भी सुख प्राप्त कर रही थीं। पडोसन की नाक से अपनी नाक छोटी कैसे रह जाए। एक छोड दस काजीवरम लानी पडे। पर हीन भावना से तो ग्रसित नहीं होना चाहिए न। मुझे लगने लगा कि मैं एक सुनियोजित चक्रव्यूह के द्वार पर आ फसा हू।

काजीवरम के बाद यह क्रम कई स्टाइलिश सलवार-सूट, कश्मीरी शहतूत के शॉल इपोर्टेड सौंदर्य प्रसाधन से गुजरता हुआ जब रूम ए॰ सी॰ पर आया तो मैंने अपना माथा ठोक लिया। यह अच्छा पडोस अब तक मेरे बैंक बैलैंस को छह अको मे कम कर चुका था और इस अच्छे पडोस की अभी कितनी और कब तक कीमते चुकानी पडेगी इसकी सभावनाए अनत और असीम थीं।

मेरी याद मे अपनी धर्मपत्नी की कोई अभिलाषा-पूर्ति मुझे इससे अधिक महगी नहीं पडी थी।

मैंने इस बार इतवार की छुट्टी का भी इतजार नही किया। बुधवार को ही छुट्टी लेकर उस खडूस प्रॉपर्टी डीलर से भिड गया। शाम तक मैंने पूरी मेहनत करके अच्छे पडोस वाले मकान से सारा सामान नये मकान मे बदल लिया था। हा, इस बार मैंने पडोस मे झाककर नही देखा था और मेरी धर्मपत्नी ने गलती से भी अच्छे पडोस का आग्रह नहीं किया था।

सरकारी आंकड़े

आखिर भारतवर्ष के नेताओ का सपना साकार हुआ। इक्कीसवीं शताब्द के दरवाजे पर दस्तक देते-देते देश का पूर्ण कम्प्यूटरीकरण हो गया। हर जगह पर हर स्थान पर कम्प्यूटर ही कम्प्यूटर दिखने लगे। सिनेमा मे कम्प्यूटर, दफ्तर मे कम्प्यूटर, घर मे कम्प्यूटर, बाजार मे कम्प्यूटर, रसोई मे कम्प्यूटर, गुसलखाने मे कम्प्यूटर, मर्दाने मे कम्प्यूटर, जनानखाने मे कम्प्यूटर, यहा तक कि शोचालय तक मे कम्प्यूटर लग गया। हर काम कम्प्यूटर से होने लगा। मनुष्य के लिए रह गया बस खाना-पीना और सोना। महिलाओ के लिए एक विशिष्ट कार्य और-बच्चे जनना। बाकी सारे कार्य इक्कीसवीं सदी कम्प्यूटरो को सौंपकर लगभग निश्चित हो गयी थी।

लेकिन यह निश्चितता लगभग सतही निकली जब जीवटलाल जी अपना त्यागपत्र स्वय लेकर अपने बॉस के पास जा पहुचे।

बॉस ने एक नजर त्यागपत्र पर डाली। चश्मा ठीक किया। जीवटलाल जी की मुखमुद्रा को ध्यान से निहारा। त्यागपत्र का एक-एक शब्द पढा ओर फिर लगभग बौखलाकर पूछा, "यह तो त्यागपत्र है?"

"जी हा, अब बुढापे मे छीछालेदर तो नहीं करायेगे न, सर। इससे तो अच्छा ही है कि त्यागपत्र देकर घर बैठे।"

"किसकी हिमाकत हुई आपकी छीछालेदर करने की? आप तो विभाग के वरिष्ठतम कर्मचारी हैं। आपकी इज्जत तो विभाग की इज्जत है, जीवटलाल जी।"

"ऐसा आप ही तो कह रहे हैं न! करनेवाले ने तो कर ही दी है।" जीवटलाल जी मायूस थे।

"कुछ बतायेगे भी या यो ही पहेलिया बुझाते रहेंगे! आप पिछले तीस वर्षों से यहा सुशोभित हैं, ऐसी हिम्मत आखिर की किसने?" बॉस हतप्रभ थे।

"देखिये सर! हमारे सारे आकडे यह दो दिन का कम्प्यूटर फेल किए दे रहा है। मै पहले ही कहता था कि कम्प्यूटर चाहे जो कर ले, जनगणना नहीं कर सकता। पैंतालीस साल पहले जो आकडे रमाशकर जी ने सैट किए थे

चालीस साल पहले जिन्हे सक्सेना जी ने आगे बढाया था और पैतीस साल पहले जिन्हे दूबे जी ने सशोधित किया था और जिसमे ज्ञानी जी, चौबे जी, वमा जी, शर्मा जी, राणा जी और देशबधु जैसे महारथियो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था उन्हे यह मुआ कल का कम्प्यूटर झुठला रहा है। अब हमने तो इस विभाग का नमक खाया है, हमसे नहीं देखा जायेगा। आप हमारा तो त्यागपत्र स्वीकार ही कर लीजिएगा।"

बॉस समस्या की गभीरता मे डूब गए। पूछा, "कौन-सा आकडा गलत बता रहा है कम्प्यूटर?"

"कौन-सा? सर, यह पूछिये कौन-सा नहीं बता रहा है। इसने तो सारे के सारे आकडो को उलट डाला है।" जीवटलाल जी का स्वर डूबे जा रहा था।

"हो सकता है पिछले वर्षो मे जनसख्या मे ज्यादा वद्धि हो गई हो, आप तो यू ही घबरा रहे है, जीवटलाल जी।" बॉस ने जीवटलाल जी को आश्वस्त करना चाहा।

"वद्धि! सर, कम्प्यूटर ने जनसख्या ही घटा दी। अब कोटा-परमिटवालो का क्या होगा! राशनिग कैसे होगी, कमीशन कैसे बनेगे!"

"अरे, इन सालो मे लोग ज्यादा मरे होगे और पैदा कम हुए होगे। बहुत समय से स्वास्थ्य कल्याण विभाग के फ्लॉप कार्यक्रम अचानक सफल हो गए होगे ऐसा हो सकता है। आखिर हम भी तो यही चाहते रहे हैं। इसमे समस्या क्या है?" बॉस ने सहज समाधान प्रस्तुत किया।

"सर, फर्क छोटा-मोटा नही, बहुत बडा है–इतना कि हजम नहीं हो पा रहा है।"

बॉस मुस्कराये, "तुम हमारे देशवासियो के हाजमे से वाकिफ नही हो शायद। इन्हे सब हजम है। लक्कड भी हजम, पत्थर भी हजम। पिछले सालो मे तुमने देखा नहीं, जो आकडा जहा मरोड दिया, वही जनता के दिमाग मे फिट हो गया। अगर करोडो की जनसख्या हजारो मे नहीं है सैकडो मे भी बताई जायेगी तो हमारे देशवासी मान लेगे। वे बहुत सहिष्णु उदार है समझदार है। तुम्हे उनके विश्वास और नीयत पर शक करने का कोई हक नही है।"

"पर सर, इसने तो आरक्षित जातियो का प्रतिशत भी गिरा दिया। इससे तो सारे देश की आरक्षण-नीति डगमगा जायेगी।" जीवटलाल जी की दुश्चिता अभी समाप्त नही हुई थी। उन्होंने दूसरी समस्या परोस दी।

बॉस ने सिर खुजलाया, "हा, यह बात जरूर परेशानी खडी करेगी। आरक्षण वाले तो चुप नही बैठेगे। वे तो आदोलन करेगे। यह बात उनकी रोटी-रोजी से सीधी ताल्लुक जो रखती है। पर इसमे तो कुछ किया भी नहीं जा सकता। मुझे याद पडता है कि दूबे जी के कार्यकाल मे इसे जमकर बढाया गया था।

राजनैतिक कारण थे। सेटर के बडे असरदार मिनिस्टर ने प्लान किया था। उसके बाद ज्ञानी जी, चौबे जी शर्मा जी राणा जी देशबधु–किसी को भी इसे बदलने की हिम्मत नही हुई। महगाई की तरह इसमे हमेशा बढोतरी ही होनी रहा है। कभी घटोतरी नहीं हुई। अब यह कम्प्यूटर अगर भूल-सुधार कर रहा है तो इसमे हम कर ही क्या सकते है।"

"पर सर, इस भूल-सुधार मे तो हम सब लद जायेगे। पिछले तीस सालो से जनगणना विभाग के हर ऑफीसर के आकडो पर हस्ताक्षर हैं। सारा देश उन्हे सही मानकर चल रहा है। क्या यह नही पूछा जायेगा कि पुराने आकडे गलत क्यो थे?"

"तुम तो बिना वजह दुबले हो रहे हो जीवटलाल जी पहले देश गलत आकडो पर चलकर प्रगति कर रहा था, अब सही आकडो पर चल लेगा। देश पुराने आकडो पर जितना चल चुका है उससे लौट तो सकता नहा। गलती और भूल भला किससे नहीं होती। जो कुछ किया गया है गुडफेथ मे किया गया है। जो आकडे रिकार्ड होकर आए, हमने तो उनको जोडा-घटाया ही था। अब रिकार्ड करने की भूल तो उन डेलीवेजेज के लोगो ने की है, जिन्हं हर जनगणना के समय तीन-चार महीने के लिए अस्थायी नोकरी पर रखा जाता रहा है। उनका तो देश और कानून कुछ बिगाड नही सकता और हम उनकी करनी के लिए जिम्मेदार नही हो सकते।"

बॉस के प्रवचन से पहली बार जीवटलाल जी थोडा आश्वस्त हुए थे। उनकी स्थायी सरकारी नौकरी को आच नही आ रही थी, लेकिन कम्प्यूटर के आकडो का झटका उन्हे अभी भी पूरी तरह बर्दाश्त नही हो पा रहा था। अत उन्होंने फिर शका की "यह सब तो ठीक है सर, पर कम्प्यूटर तो अल्पसख्यको को बहुसख्यक और बहुसख्यको को अल्पसख्यक बता रहा है।"

"यह तो एक दिन होना था दस साल पहले राणा जी ने इसकी भविष्यवाणी कर दी थी। मैं सोचता था कि यह मेरे कार्यकाल मे नहीं होगा। मेरे रिटायरमेट के बाद ही होगा पर अब अगर कम्प्यूटर ने इसे इसी साल घोषित कर दिया है तो क्या बिगड गया। अब भविष्य की इस समस्या से देश और नेता जल्दी ही दो-चार हो लेगे। शुभस्य शीघ्रम।"

"पर यह तो सारी परिभाषाए उलट देगा। अल्पसख्यको को जो राजनैतिक सुविधाओ की आदत है वह कैसे छूटेगी और बहुसख्यक अब उन सुविधाओ के लिए मारा-मारी करेगे। बडी विस्फोटक स्थिति हो जायेगी देश की।"

"यहा मै तुमसे सहमत हू। मेरी समझ मे इतनी बडी जिम्मेदारी अकेले जनगणना विभाग को नही उठानी चाहिए। इसका भार सरकार पर भी पडना चाहिए। मै अभी सारी स्थिति से सरकार को अवगत कराता हू। तुम कम्प्यूटर

के सभी आकडे मुझे लाकर दो।" बॉस ने अपनी प्रशासनिक सूझ से निर्णय लिया।

जीवटलाल जी दौडकर आकडो का पुलिदा ले आए। बॉस ने फोन से सपक किया। सक्षेप मे सारी बाते समझायी।

दूसरा ओर से सरकार ने डाट पिलाई, "ह्वाट, चुनाव के ठीक पहले तुम यह सब उलट-फेर करना चाहते हो। तुम्हे पता है कि इस सब का चुनाव पर क्या असर पडेगा? गणतत्र पर क्या असर पडेगा? और सरकार पर क्या असर पडेगा?"

"पर सर, कम्प्यूटर तो यहा बता रहा है।" बॉस ने प्रतिवाद किया।

"टू हल विद योर कम्प्यूटर! तुमने उसे फीड ही गलत किया होगा। अगर उसे सहा फाड किया जाता तो ये आकडे कभी नहीं आ सकते थे। हम इतना खतरा मोल नहीं ले सकते। तुम्हारा कम्प्यूटर ही खराब है। चुनाव के बाद ठीक कराकर उससे आकडे लेना। ठीक से फीड करके। अभी पुराने आकडे ही चलने दो।" सरकार फिर गरजी।

"पर सर, कम्प्यूटर तो सही काम कर रहा है।"

"तो उसे खराब कर दो! तब तो वह सही काम नहा करेगा।"

"सर, इस विभाग मे किसी को अभी कम्प्यूटर खराब करना नहीं आता! क्या आप किसी मैकेनिक को भेज देगे?"

"भेजना ही पडेगा निर्वाचन से पहले इतना बडा रिस्क हम नही ले सकते। आप इतजार कीजिए, मैं अभी मैकेनिक भेजता हू।" और सरकार ने लाइन काट दी।

बॉस ने चोगा रखकर सतोष की गहरी सास ली। जीवटलाल जी की ओर देखकर मुसकराये "आप भी बीमार कम्प्यूटर के आकडो को पढ-पढकर बौखला रहे है। शाम तक मैकेनिक आ जाएगा और कम्प्यूटर की बीमारी का प्रमाणपत्र दे जाएगा। फिर आपके ही आकडे चलेगे। वही जनसख्या वृद्धि वाले, वही अधिकतम आरक्षण वाले और वही अल्पसख्यक वाले।"

जीवटलाल जी की मुखमुद्रा खिल उठी। बॉस ने उनके त्यागपत्र को उठाकर एक बार उस पर फिर निगाह डाली, "इसका क्या करना है?"

"इसे तो अब वापस ही दे दीजिए, सर!" जीवटलाल जी ने हाथ बढा दिया।

त्यागपत्र वापस लेकर जीवटलाल जी अब अपनी सीट पर वापस लौटे तो उनका मन बहुत हलका हो चुका था-निर्द्वंद्व, सहज और निर्विकार।

दरोगा जी का कोट

भारतवर्ष का एक नागरिक पुलिस विभाग मे सिपाही बन गया। देश और काल के प्रभाव मे उसे 'ऊपर की आमदनी' की आदत पड गयी। अकसर पड ही जाती हे। आजकल रिवाज जो चल रहा हे। आदत लत मे बदल गयी। बदल ही जाती है। कोई अनहोनी बात नही है। जो आमतौर से होता रहता ह वही उसके साथ भी घट गया। अब सिपाही जी से मुट्ठी गरम किये बिना कोइ काम नही होता था। उन्होंने मुफ्तखोरी छोड दी थी। घर की सब्जी खरीदते हुए भी कुछ पैसे जरूर मार लेते थे। चाहे एक जेब से निकालकर दूसरी हा जेब मे क्यो न सरकाने पडे, पर अपने ही माल मे भी वह हेराफेरी से बाज नही आते थे।

एक दिन पत्नी ने काम बताया, "आज मुन्ना की फीस जमा करते आना।" तो बेचारे फीस भी जमा नही करा सके। पत्नी ने ऊपर मे कुछ नहा दिया था। सारे दिन सोचते रहे कि क्या मुफ्त मे ही फीस जमा करा दू? बेटा अपना है तो क्या हुआ, फीस जमा कराने तो जाना ही पडेगा। इस तरह तो मेरा आदत खराब हो जाएगी। मुफ्त काम वह भी अपने देश की पुलिसिया नौकरी मे। सोचो कैसा नाम बदनाम होगा। ऐसा धब्बा लगेगा कि सदियो तक नहीं धुलेगा। सो अपनी नौकरी की मान-मयादा बचाने की खातिर पत्नी से अगले दिन बोले "भाग्यवान, क्यो मेरी जान के पीछे पडी हो। मुन्ना की फीस मै जमा नही करा सकता। तू खुद कर आ या पडोस के मास्टर को दे दे। यह ले फीस वापस। बस, पाच रुपये कम है। चाय-बीडी मे बिगड गये।" इस तरह अपना लिहाजाना कमीशन काटकर उन्होंने इस धर्म-सकट से अपने को उबारा।

एक दिन अपने इन्हीं सिपाही जी को एक घनघोर सकट ने आ घेरा। थाने के जो नये दरोगा आए, वह भी अपने उसूलो के पक्के थे। काना कौडी खचने के लिए उनके पास कोई जेब ही नहीं थी। उनकी सारी ड्रेसे मे एक ही जेब होती थी जिसमे पैसा जा तो सकता था पर निकलने का उसमे कोइ रास्ता ही नहीं होता था। जिस जेव मे हजारो रुपये आराम से समा जाते थे उसमे से पाच रुपये निकलवाने के लिए जाहि त्राहि करना पडता थी। ऐसे दरोगा से जब सिपाह

के सभा आकडे मुझे लाकर दो।" बॉस ने अपनी प्रशासनिक सूझ से निर्णय लिया।

जीवटलाल जी दौडकर आकडो का पुलिदा ले आए। बॉस ने फोन से सपक किया। सक्षेप मे सारी बाते समझायी।

दूसरी ओर से सरकार ने डाट पिलाई "व्हाट, चुनाव के ठीक पहले तुम यह सब उलट-फेर करना चाहते हो। तुम्हे पता है कि इस सब का चुनाव पर क्या असर पडेगा? गणतत्र पर क्या असर पडेगा? और सरकार पर क्या असर पडेगा?"

"पर सर, कम्प्यूटर तो यही बता रहा है।" बॉस ने प्रतिवाद किया।

"टू हैल विद योर कम्प्यूटर। तुमने उसे फीड ही गलत किया होगा। अगर उसे सही फीड किया जाता तो ये आकडे कभी नहीं आ सकते थे। हम इतना खतरा मोल नहीं ले सकते। तुम्हारा कम्प्यूटर ही खराब है। चुनाव के बाद ठीक कराकर उससे आकडे लेना। ठीक से फीड करके। अभी पुराने आकडे ही चलने दो।" सरकार फिर गरजा।

"पर सर, कम्प्यूटर तो सही काम कर रहा है।"

"तो उसे खराब कर दो। तब तो वह सही काम नहा करेगा।"

"सर, इस विभाग मे किसी को अभी कम्प्यूटर खराब करना नहीं आता। क्या आप किसी मैकेनिक को भेज देगे?"

"भेजना ही पडेगा, निर्वाचन से पहले इतना बडा रिस्क हम नही ले सकते। आप इतजार कीजिए, मैं अभी मैकेनिक भेजता हू।" और सरकार ने लाइन काट दी।

बॉस ने चोगा रखकर सतोष की गहरी सास ली। जीवटलाल जी की ओर देखकर मुसकराये "आप भी बीमार कम्प्यूटर के आकडो को पढ-पढकर बौखला रहे हैं। शाम तक मैकेनिक आ जाएगा और कम्प्यूटर की बीमारी का प्रमाणपत्र दे जाएगा। फिर आपके ही आकडे चलेगे। वही जनसख्या वृद्धि वाले, वही अधिकतम आरक्षण वाले और वही अल्पसख्यक वाले।"

जीवटलाल जी की मुखमुद्रा खिल उठी। बॉस ने उनके त्यागपत्र को उठाकर एक बार उस पर फिर निगाह डाली, "इसका क्या करना है?"

"इसे तो अब वापस ही दे दीजिए, सर।" जीवटलाल जी ने हाथ बढा दिया।

त्यागपत्र वापस लेकर जीवटलाल जी अब अपनी सीट पर वापस लौटे तो उनका मन बहुत हलका हो चुका था—निर्द्वंद्व, सहज और निर्विकार।

दरोगा जी का कोट

भारतवर्ष का एक नागरिक पुलिस विभाग मे सिपाही बन गया। देश और काल के प्रभाव मे उसे 'ऊपर की आमदनी' की आदत पड गयी। अकसर पड ही जाती हे। आजकल रिवाज जो चल रहा है। आदत लत मे बदल गयी। बदल ही जाती हे। कोई अनहोनी बात नही हे। जो आमतौर से होता रहता हे वही उसके माथ भी घट गया। अब सिपाही जी से मुट्ठी गरम किये बिना कोई काम नही होता था। उन्होंने मुफ्तखोरी छोड दी थी। घर की सब्जी खरीदते हुए भी कुछ पैसे जरूर मार लेते थे। चाहे एक जेब से निकालकर दूसरी ही जेब मे क्यो न सरकाने पडे, पर अपने ही माल मे भी वह हेराफेरी से बाज नही आते थे।

एक दिन पत्नी ने काम बताया, "आज मुन्ना की फीस जमा करते आना।" तो बेचारे फीस भी जमा नही करा सके। पत्नी ने ऊपर से कुछ नही दिया था। सारे दिन सोचते रहे कि क्या मुफ्त मे ही फीस जमा कग दू? बेटा अपना है तो क्या हुआ, फीस जमा कराने तो जाना ही पडेगा। इस तरह तो मेरा आदन खराब हो जाएगी। मुफ्त काम, वह भी अपने देश की पुलिसिया नौकरी मे। सोचो कैसा नाम बदनाम होगा। ऐसा धब्बा लगेगा कि सदियो तक नहीं धुलेगा। सो अपनी नौकरी की मान-मर्यादा बचाने की खातिर पत्नी से अगले दिन बोले "भाग्यवान, क्यो मेरी जान के पीछे पडी हो। मुन्ना की फीस मै जमा नहीं करा सकता। तू खुद कर आ या पडोस के मास्टर को दे दे। यह ले फीस वापस। बस, पाच रुपये कम है। चाय-बीडी मे बिगड गये।" इस तरह अपना लिहाजाना कमीशन काटकर उन्होने इस धर्म-सकट से अपने को उबारा।

एक दिन अपने इन्ही सिपाही जी को एक घनघोर सकट ने आ घेरा। थाने के जो नये दरोगा आए, वह भी अपने उसूलो के पक्के थे। कानी कोडी खचने के लिए उनके पास कोई जेब ही नहीं थी। उनकी सारी ड्रेसे मे एक हा जेब होती थी जिसमे पेसा जा तो सकता था, पर निकलने का उसमे कोइ राम्ता ही नहीं होता था। जिस जेब मे हजारो रुपये आराम से समा जाते थे उसमे मे पाच रुपये निकलवाने के लिए जाह तग पडती थी। ऐसे दरोगा से जब [illegible]

के सभी आकडे मुझे लाकर दो।" बॉस ने अपनी प्रशासनिक सूझ से निर्णय लिया।

जावटलाल जी दौडकर आकडो का पुलिदा ले आए। बॉस ने फोन से सपक किया। सक्षेप मे सारी बाते समझायी।

दूसरा ओर से सरकार ने डाट पिलाई, "ह्वाट चुनाव के ठीक पहले तुम यह सब उलट-फेर करना चाहते हो। तुम्हे पता है कि इस सब का चुनाव पर क्या असर पडेगा? गणतत्र पर क्या असर पडेगा? और सरकार पर क्या असर पडेगा?"

"पर सर, कम्प्यूटर तो यही बता रहा है।" बॉस ने प्रतिवाद किया।

"टू हेल विद योर कम्प्यूटर! तुमने उसे फीड ही गलत किया होगा। अगर उसे सहा फीड किया जाता तो ये आकडे कभी नहीं आ सकते थे। हम इतना खतरा मोल नहीं ले सकते। तुम्हारा कम्प्यूटर ही खराब है। चुनाव के बाद ठीक कराकर उससे आकडे लेना। ठीक से फीड करके। अभी पुराने आकडे ही चलने दो।" सरकार फिर गरजी।

"पर सर, कम्प्यूटर तो सही काम कर रहा है।"

"तो उसे खराब कर दो! तब तो वह सही काम नहा करेगा।"

"सर, इस विभाग मे किसी को अभी कम्प्यूटर खराब करना नहीं आता! क्या आप किसी मैकेनिक को भेज देगे?"

"भेजना ही पडेगा निर्वाचन से पहले इतना बडा रिस्क हम नही ले सकते। आप इतजार कीजिए, मैं अभी मैकेनिक भेजता हू।" और सरकार ने लाइन काट दी।

बॉस ने चोगा रखकर सतोष की गहरी सास ली। जीवटलाल जी की ओर देखकर मुसकराये "आप भी बीमार कम्प्यूटर के आकडो को पढ-पढकर बौखला रहे हैं। शाम तक मैकेनिक आ जाएगा और कम्प्यूटर की बीमारी का प्रमाणपत्र दे जाएगा। फिर आपके ही आकडे चलेगे। वही जनसख्या वृद्धि वाले, वही अधिकतम आरक्षण वाले और वही अल्पसख्यक वाले।"

जीवटलाल जी की मुखमुद्रा खिल उठी। बॉस ने उनके त्यागपत्र को उठाकर एक बार उस पर फिर निगाह डाली, "इसका क्या करना है?"

"इसे तो अब वापस ही दे दीजिए, सर।" जीवटलाल जी ने हाथ बढा दिया।

त्यागपत्र वापस लेकर जीवटलाल जी अब अपनी सीट पर वापस लौटे तो उनका मन बहुत हलका हो चुका था—निर्द्वंद्व, सहज और निर्विकार।

दरोगा जी का कोट

भारतवर्ष का एक नागरिक पुलिस विभाग मे सिपाही बन गया। देश और काल के प्रभाव मे उसे 'ऊपर की आमदनी' की आदत पड गयी। अकसर पड ही जाती है। आजकल रिवाज जो चल रहा है। आदत लत मे बदल गयी। बदल ही जाती है। कोई अनहोनी बात नही है। जो आमतौर से होता रहता है वही उसके साथ भी घट गया। अब सिपाही जी से मुट्ठी गरम किये बिना कोई काम नही होता था। उन्होंने मुफ्तखोरी छोड दी थी। घर की सब्जी खरीदते हुए भी कुछ पैसे जरूर मार लेते थे। चाहे एक जेब से निकालकर दूसरी ही जेब मे क्यो न सरकाने पडे, पर अपने ही माल मे भी वह हेराफेरी से बाज नही आते थे।

एक दिन पत्नी ने काम बताया, "आज मुन्ना की फीस जमा करते आना।" तो बेचारे फीस भी जमा नही करा सके। पत्नी ने ऊपर से कुछ नही दिया था। सारे दिन सोचते रहे कि क्या मुफ्त मे ही फीस जमा करा दू? बेटा अपना है तो क्या हुआ, फीस जमा कराने तो जाना ही पडेगा। इस तरह तो मेरी आदत खराब हो जाएगी। मुफ्त काम, वह भी अपने देश की पुलिसिया नौकरी मे। सोचो, कैसा नाम बदनाम होगा। ऐसा धब्बा लगेगा कि सदियो तक नहीं धुलेगा। सो अपनी नौकरी की मान-मर्यादा बचाने की खातिर पत्नी से अगले दिन बोले "भाग्यवान, क्यो मेरी जान के पीछे पडी हो। मुन्ना की फीस मै जमा नही करा सकता। तू खुद कर आ या पडोस के मास्टर को दे दे। यह ले फीस वापस। बस, पाच रुपये कम है। चाय-बीडी मे बिगड गये।" इस तरह अपना लिहाजाना कमीशन काटकर उन्होने इस धर्म-सकट से अपने को उबारा।

एक दिन अपने इन्ही सिपाही जी को एक घनघोर सकट ने आ घेरा। थाने के जो नये दरोगा आए, वह भी अपने उसूलो के पक्के थे। कानी कोडी खर्चने के लिए उनके पास कोई जेब ही नहीं थी। उनकी सारी ड्रेसो मे एक ही जेब होती थी जिसमे पैसा जा तो सकता था पर निकलने का उसमे कोई रास्ता ही नहीं होता था। जिस जेब मे हजारो रुपये आराम से समा जाते थे उसमे से पाच रुपये निकलवाने के लिए जान तग पडती थी। ऐसे दरोगा से जब सिपाही

के सभी आकडे मुझे लाकर दो।" बॉस ने अपनी प्रशासनिक सूझ से निर्णय लिया।

जीवटलाल जी दौडकर आकडो का पुलिदा ले आए। बॉस ने फोन से सपर्क किया। सक्षेप मे सारी बाते समझायी।

दूसरी ओर से सरकार ने डाट पिलाई, "व्हाट, चुनाव के ठीक पहले तुम यह सब उलट-फेर करना चाहते हो। तुम्हे पता है कि इस सब का चुनाव पर क्या असर पडेगा? गणतत्र पर क्या असर पडेगा? और सरकार पर क्या असर पडेगा?"

"पर सर, कम्प्यूटर तो यही बता रहा है।" बॉस ने प्रतिवाद किया।

"टू हैल विद योर कम्प्यूटर। तुमने उसे फीड ही गलत किया होगा। अगर उसे सही फीड किया जाता तो ये आकडे कभी नहीं आ सकते थे। हम इतना खतरा मोल नहीं ले सकते। तुम्हारा कम्प्यूटर ही खराब है। चुनाव के बाद ठीक कराकर उससे आकडे लेना। ठीक से फीड करके। अभी पुराने आकडे ही चलने दो।" सरकार फिर गरजा।

"पर सर, कम्प्यूटर तो सही काम कर रहा है।"

"तो उसे खराब कर दो। तब तो वह सही काम नहीं करेगा।"

"सर, इस विभाग मे किसी को अभी कम्प्यूटर खराब करना नहीं आता। क्या आप किसी मैकेनिक को भेज देगे?"

"भेजना ही पडेगा, निर्वाचन से पहले इतना बडा रिस्क हम नही ले सकते। आप इतजार कीजिए, मैं अभी मैकेनिक भेजता हू।" और सरकार ने लाइन काट दी।

बॉस ने चोगा रखकर सतोष की गहरी सास ली। जीवटलाल जी की ओर देखकर मुसकराये "आप भी बीमार कम्प्यूटर के आकडो को पढ-पढकर बौखला रहे हैं। शाम तक मैकेनिक आ जाएगा और कम्प्यूटर की बीमारी का प्रमाणपत्र दे जाएगा। फिर आपके ही आकडे चलेगे। वही जनसख्या वृद्धि वाले, वही अधिकतम आरक्षण वाले और वही अल्पसख्यक वाले।"

जीवटलाल जी की मुखमुद्रा खिल उठी। बॉस ने उनके त्यागपत्र को उठाकर एक बार उस पर फिर निगाह डाली, "इसका क्या करना है?"

"इसे तो अब वापस ही दे दीजिए, सर।" जीवटलाल जी ने हाथ बढा दिया।

त्यागपत्र वापस लेकर जीवटलाल जी अब अपनी सीट पर वापस लौटे तो उनका मन बहुत हलका हो चुका था–निर्द्वंद्व, सहज और निर्विकार।

दरोगा जी का कोट

भारतवर्ष का एक नागरिक पुलिस विभाग मे सिपाही बन गया। देश और काल के प्रभाव मे उसे 'ऊपर की आमदनी' की आदत पड गयी। अकसर पड हा जाती हे। आजकल रिवाज जो चल रहा है। आदत लत मे बदल गयी। बदल ही जाती हे। कोई अनहोनी बात नही है। जो आमतौर से होता रहता ह वहा उसके साथ भी घट गया। अब सिपाही जी से मुट्ठी गरम किये बिना कोइ काम नही होता था। उन्होंने मुफ्तखोरी छोड दी थी। घर की सब्जी खरीदते हुए भी कुछ पैसे जरूर मार लेते थे। चाहे एक जेब से निकालकर दूसरी ही जेब मे क्यो न सरकाने पडे, पर अपने ही माल मे भी वह हेराफेरी से बाज नहा आते थे।

एक दिन पत्नी ने काम बताया, "आज मुन्ना की फीस जमा करते आना।" तो बेचारे फीस भी जमा नही करा सके। पत्नी ने ऊपर से कुछ नही दिया था। सारे दिन सोचते रहे कि क्या मुफ्त मे ही फीस जमा करा दू? बेटा अपना है तो क्या हुआ, फीस जमा कराने तो जाना ही पडेगा। इस तरह तो मेरी आदत खराब हो जाएगी। मुफ्त काम, वह भी अपने देश की पुलिसिया नौकरी मे। सोचो, कैसा नाम बदनाम होगा। ऐसा धब्बा लगेगा कि सदियो तक नहीं धुलेगा। सो अपनी नौकरी की मान-मर्यादा बचाने की खातिर पत्नी से अगले दिन बोले "भाग्यवान, क्यो मेरी जान के पीछे पडी हो। मुन्ना की फीस मै जमा नही करा सकता। तू खुद कर आ या पडोस के मास्टर को दे दे। यह ले फीस वापस। बस, पाच रुपये कम है। चाय-बीडी मे बिगड गये।" इस तरह अपना लिहाजाना कमीशन काटकर उन्होंने इस धर्म-सकट से अपने को उबारा।

एक दिन अपने इन्ही सिपाही जी को एक घनघोर सकट ने आ घेरा। थाने के जो नये दरोगा आए, वह भी अपने उसूलो के पक्के थे। कानी कौडी खर्चने के लिए उनके पास कोई जेब ही नहीं थी। उनकी सारी ड्रेसो मे एक ही जेब होती थी जिसमे पेसा जा तो सकता था, पर निकलने का उसमे कोई रास्ता ही नहीं होता था। जिस जेब मे हजारो रुपये आराम से समा जाते थे, उसमे से पाच रुपये निकलवाने के लिए जगह तग पडती थी। ऐसे दरोगा मे जब सिपाही

के सभी आकडे मुझे लाकर दो।" बॉस ने अपनी प्रशासनिक सूझ से निर्णय लिया।

जीवटलाल जी दौडकर आकडो का पुलिदा ले आए। बॉस ने फोन से सपक किया। सक्षेप म सारी बाते समझायी।

दूसरी ओर से सरकार ने डाट पिलाई "ह्वाट चुनाव के ठीक पहले तुम यह सब उलट-फेर करना चाहते हो। तुम्हे पता है कि इस सब का चुनाव पर क्या असर पडेगा? गणतत्र पर क्या असर पडेगा? और सरकार पर क्या असर पडेगा?"

"पर सर, कम्प्यूटर तो यही बता रहा है।" बॉस ने प्रतिवाद किया।

"टू हेल विद योर कम्प्यूटर। तुमने उसे फीड ही गलत किया होगा। अगर उसे सही फीड किया जाता तो ये आकडे कभी नहीं आ सकते थे। हम इतना खतरा मोल नहीं ले सकते। तुम्हारा कम्प्यूटर ही खराब है। चुनाव के बाद ठीक कराकर उससे आकडे लेना। ठीक से फीड करके। अभी पुराने आकडे ही चलने दो।" सरकार फिर गरजी।

"पर सर, कम्प्यूटर तो सही काम कर रहा है।"

"तो उसे खराब कर दो। तब तो वह सही काम नहीं करेगा।"

"सर, इस विभाग मे किसी को अभी कम्प्यूटर खराब करना नहीं आता। क्या आप किसी मैकेनिक को भेज देगे?"

"भेजना ही पडेगा निर्वाचन से पहले इतना बडा रिस्क हम नही ले सकते। आप इतजार कीजिए, मैं अभी मैकेनिक भेजता हू।" और सरकार ने लाइन काट दी।

बॉस ने चोगा रखकर सतोष की गहरी सास ली। जीवटलाल जी की ओर देखकर मुसकराये, "आप भी बीमार कम्प्यूटर के आकडो को पढ-पढकर बौखला रहे हैं। शाम तक मैकेनिक आ जाएगा और कम्प्यूटर की बीमारी का प्रमाणपत्र दे जाएगा। फिर आपके ही आकडे चलेगे। वही जनसख्या वृद्धि वाले, वही अधिकतम आरक्षण वाले और वही अल्पसख्यक वाले।"

जीवटलाल जी की मुखमुद्रा खिल उठी। बॉस ने उनके त्यागपत्र को उठाकर एक बार उस पर फिर निगाह डाली, "इसका क्या करना है?"

"इसे तो अब वापस ही दे दीजिए, सर।" जीवटलाल जी ने हाथ बढा दिया।

त्यागपत्र वापस लेकर जीवटलाल जी अब अपनी सीट पर वापस लौटे तो उनका मन बहुत हलका हो चुका था—निर्द्वंद्व, सहज और निर्विकार।

दरोगा जी का कोट

भारतवर्ष का एक नागरिक पुलिस विभाग मे सिपाही बन गया। देश और काल के प्रभाव मे उसे 'ऊपर की आमदनी' की आदत पड गयी। अकसर पड ही जाती हे। आजकल रिवाज जो चल रहा है। आदत लत मे बदल गयी। बदल ही जाती है। कोई अनहोनी बात नही है। जो आमतौर से होता रहता ह वही उसके साथ भी घट गया। अब सिपाही जी से मुट्ठी गरम किये बिना कोइ काम नही होता था। उन्होंने मुफ्तखोरी छोड दी थी। घर की सब्जी खरीदने हुए भी कुछ पैसे जरूर मार लेते थे। चाहे एक जेब से निकालकर दूसरी हा जेब मे क्यो न सरकाने पडे, पर अपने ही माल मे भी वह हेराफेरी से बाज नहीं आते थे।

एक दिन पत्नी ने काम बताया, "आज मुन्ना की फीस जमा करते आना।" तो बेचारे फीस भी जमा नही करा सके। पत्नी ने ऊपर से कुछ नहीं दिया था। सारे दिन सोचते रहे कि क्या मुफ्त मे ही फीस जमा कग दू? बेटा अपना हे तो क्या हुआ, फीस जमा कराने तो जाना ही पडेगा। इस तरह तो मेरी आदन खराब हो जाएगी। मुफ्त काम वह भी अपने देश की पुलिसिया नौकरी मे। सोचो, कैसा नाम बदनाम होगा। ऐसा धब्बा लगेगा कि सदियो तक नहीं धुलेगा। सो अपनी नौकरी की मान-मर्यादा बचाने की खातिर पत्ना से अगले दिन बोले "भाग्यवान, क्यो मेरी जान के पीछे पडी हो। मुन्ना की फीस मैं जमा नही करा सकता। तू खुद कर आ या पडोस के मास्टर को दे दे। यह ले फीस वापस। बस, पाच रुपये कम है। चाय-बीडी मे बिगड गये।" इस तरह अपना लिहाजाना कमीशन काटकर उन्होने इस धर्म-सकट से अपने को उबारा।

एक दिन अपने इन्ही सिपाही जी को एक घनघोर सकट ने आ घेरा। थाने के जो नये दरोगा आए, वह भी अपने उसूलो के पक्के थे। कानी कोडी खर्चने के लिए उनके पास कोई जेब ही नहीं थी। उनकी सारी ड्रेसो मे एक ही जेब होती थी जिसमे पैसा जा तो सकता था, पर निकलने का उसमे कोई रास्ता ही नहीं होता था। जिस जेब मे हजारो रुपये आराम से समा जाते थे उसमे से पाच रुपये निकलवाने के लिए जगह तग पडती थी। ऐसे दरोगा से जब सिपाहा

के सभी आकडे मुझे लाकर दो।" बॉस ने अपनी प्रशासनिक सूझ से निर्णय लिया।

जीवटलाल जी दौडकर आकडो का पुलिदा ले आए। बॉस ने फोन से सपक किया। सक्षेप मे सारी बाते समझायी।

दूसरी ओर से सरकार ने डाट पिलाई "ह्वाट चुनाव के ठीक पहले तुम यह सब उलट-फेर करना चाहते हो। तुम्हे पता है कि इस सब का चुनाव पर क्या असर पडेगा? गणतत्र पर क्या असर पडेगा? और सरकार पर क्या असर पडेगा?"

"पर सर, कम्प्यूटर तो यही बता रहा है।" बॉस ने प्रतिवाद किया।

"टू हैल विद योर कम्प्यूटर। तुमने उसे फीड ही गलत किया होगा। अगर उसे सही फीड किया जाता तो ये आकडे कभी नहीं आ सकते थे। हम इतना खतरा मोल नहीं ले सकते। तुम्हारा कम्प्यूटर ही खराब है। चुनाव के बाद ठीक कराकर उसमे आकडे लेना। ठीक से फीड करके। अभी पुराने आकडे ही चलने दो।" सरकार फिर गरजी।

"पर सर, कम्प्यूटर तो सही काम कर रहा है।"

"तो उसे खराब कर दो। तब तो वह सही काम नहीं करेगा।"

"सर, इस विभाग मे किसी को अभी कम्प्यूटर खराब करना नहीं आता। क्या आप किसी मैकेनिक को भेज देगे?"

"भेजना ही पडेगा निर्वाचन से पहले इतना बडा रिस्क हम नही ले सकते। आप इतजार कीजिए, मै अभी मैकेनिक भेजता हू।" और सरकार ने लाइन काट दी।

बॉस ने चोगा रखकर सतोष की गहरी सास ली। जीवटलाल जी की ओर देखकर मुसकराये, "आप भी बीमार कम्प्यूटर के आकडो को पढ-पढकर बौखला रहे हैं। शाम तक मैकेनिक आ जाएगा और कम्प्यूटर की बीमारी का प्रमाणपत्र दे जाएगा। फिर आपके ही आकडे चलेगे। वही जनसख्या वृद्धि वाले, वही अधिकतम आरक्षण वाले और वही अल्पसख्यक वाले।"

जीवटलाल जी की मुखमुद्रा खिल उठी। बॉस ने उनके त्यागपत्र को उठाकर एक बार उस पर फिर निगाह डाली, "इसका क्या करना है?"

"इसे तो अब वापस ही दे दीजिए, सर।" जीवटलाल जी ने हाथ बढा दिया।

त्यागपत्र वापस लेकर जीवटलाल जी अब अपनी सीट पर वापस लौटे तो उनका मन बहुत हलका हो चुका था–निर्द्वंद्व, सहज और निर्विकार।

दरोगा जी का कोट

भारतवर्ष का एक नागरिक पुलिस विभाग मे सिपाही बन गया। देश और काल के प्रभाव मे उसे 'ऊपर की आमदनी' की आदत पड गयी। अकसर पड हा जाती हे। आजकल रिवाज जो चल रहा है। आदत लत मे बदल गयी। बदल ही जाती हे। कोई अनहोनी बात नही है। जो आमतौर से होता रहता हैं वही उसके साथ भी घट गया। अब सिपाही जी से मुट्ठी गरम किये बिना कोइ काम नही होता था। उन्होंने मुफ्तखोरी छोड दी थी। घर की सब्जी खरादते हुए भी कुछ पैसे जरूर मार लेते थे। चाहे एक जेब से निकालकर दूसरी ही जेब मे क्यो न सरकाने पडे, पर अपने ही माल मे भी वह हेराफेरी से बाज नहा आते थे।

एक दिन पत्नी ने काम बताया, "आज मुन्ना की फीस जमा करते आना।" तो बेचारे फीस भी जमा नही करा सके। पत्नी ने ऊपर से कुछ नही दिया था। सारे दिन सोचते रहे कि क्या मुफ्त मे ही फीस जमा करा दू? बेटा अपना है तो क्या हुआ, फीस जमा कराने तो जाना ही पडेगा। इस तरह तो मेरी आदत खराब हो जाएगी। मुफ्त काम वह भी अपने देश की पुलिसिया नाकरी मे। सोचो, कैसा नाम बदनाम होगा! ऐसा धब्बा लगेगा कि सदियो तक नहीं धुलेगा। सो अपनी नोकरी की मान-मर्यादा बचाने की खातिर पत्नी से अगले दिन बोले "भाग्यवान, क्यो मेरी जान के पीछे पडी हो! मुन्ना की फीस मैं जमा नहीं करा सकता। तू खुद कर आ या पडोस के मास्टर को दे दे। यह ले फीस वापस। बस, पाच रुपये कम है। चाय-बीडी मे बिगड गये।" इस तरह अपना लिहाजाना कमीशन काटकर उन्होने इस धर्म-सकट से अपने को उबारा।

एक दिन अपने इन्ही सिपाही जी को एक घनघोर सकट ने आ घेरा। थाने के जो नये दरोगा आए, वह भी अपने उसूलो के पक्के थे। कानी कौडी खर्चने के लिए उनके पास कोई जेब ही नहीं थी। उनकी सारी ड्रेसो मे एक ही जेब होती थी जिसमे पेसा जा तो सकता था, पर निकलने का उसमे कोई रास्ता ही नहीं होता था। जिस जेब मे हजारो रुपये आराम से समा जाते थे उसमें मे पाच रुपये निकलवाने के लिए जगह तग पडती थी। ऐसे दरोगा से जब सिपाही

जा की मुठभेड हुइ तो सकट के बादल उमड आये। सवाल विभाग की मर्यादा क' पद' हो ग्या। सिपहिया आन पर आच आने लगी थी। दोनो ओर से भृकुटि तन 'इ।

दरोगा जी ने हुकुम दिया, "मेरे कोट का बटन टूट गया हे। दर्जी से टकवा कर लाओ।"

सिपाही जी ने कोट सभाला और हैड मुहर्रिर के पास पहुच गए। पूछा "सिपाही की ड्यूटी मे कोट का बटन टकवाना कहीं दर्ज है जरा दिखाओ?"

हड मुहर्रिर ने पूरा एक घटा सिर खपाया पर बटन टकवाना पुलिस के ड्यूटी-शिड्यूल मे नहीं ढूढ सका । लेकिन था वह दरोगा जी का चमचा। उसके हाथो से भला दरोगा जी की बात कैसे गिर सकती थी। उसने सिपाही जी को अंतिम दज लाइन पढवाई–"और वे सभी कार्य जिनका हुकुम सीनियर ऑफिसर समय-समय पर दे।" फिर समझाया "कोट का बटन टकवाना इसी धारा से कवर होकर सरकारी ड्यूटी मे आ जाता है समझे?"

बटन टकवाना भी सरकारी ड्यूटी का हिस्सा है, इस बात से पूरी तरह आश्वस्त होकर सिपाही जी थाने से बाहर निकल आए। सरकारी नौकरी मे सरकारी ड्यूटी तो करनी ही थी। दर्जी की ओर जाते-जाते कुछ सोचकर पहले बटनवाले की दुकान का रुख किया। कोट सामने करके बोले, "दरोगा जी का कोट हैं, बटन दिखाओ।"

सरकारी कोट देखकर दुकानदार ने सारा काम छोड दिया। मेल का बटन ढूढने मे जी-जान से लग गया। मिला तो मुसकराकर सिपाही जी को देखा, "यह ठीक रहेगा।"

सिपाही जी को लगा कि यह दुकानदार जरूरत के मुताबिक एक बटन देकर टाल देगा। मुखमुद्रा की गभीरता को बिना लोच दिए बोले, "एक दर्जन चाहिए।"

"लेकिन टूटा तो एक ही है एक ही तो बदला जाएगा?" दुकानदार प्रश्नवाचक हो गया।

"यह कोट सरकारी है। इसके बटन टूटते ही रहते हे। मै बार-बार चक्कर लगाऊगा क्या?" सिपाही गरजा।

दुकानदार ने चुपचाप एक दर्जन बटन गिन दिए। बटन मुट्ठी मे सभाल सिपाही जी ने प्रश्न दागा "कितने पैसे हुए?"

दुकानदार गिडगिडाया "पैसे कैसे! दरोगा जी का कोट है इसके बटन के भी पैसे लेगे क्या? आप बस दरोगा जी से हमारा नमस्कार कह दीजिएगा।"

"ठीक है कह देगे। समझ लो कि नमस्कार पहुच गया।" सिपाही जी ने तेवर बदले और बोले "समझदार आदमी लगते हो, हमे अब तुम्हारा पुराना

सुझाव ही ठीक जच रहा है। बदला तो एक ही जाएगा, इसलिए तुम बाकी ग्यारह बटन वापस लेकर इनके पैसे दे दो।"

दुकानदार अवाक् होकर सिपाही जी का मुह तकने लगा, लेकिन सिपाही जी के चेहरे के तनाव मे कोई ढील नहीं आयी। कुछ सोचकर गल्ले से ग्यारह रुपये निकालकर सिपाही जी की ओर सरका दिये। सिपाही जी के माथे पर बल पड गये, "ये क्या, दरोगा जी के एक बटन की कीमत एक रुपया! महगाइ के जमाने मे भी तुमने सरकारी माल इतना सस्ता समझा है? लूट मच रही है क्या? दरोगा जी के कोट का एक बटन दस रुपये से कम का नही हो सकता। निकालो एक सौ दस रुपये।"

दुकानदार के चेहरे पर मुर्दनी छा गई, पर सिपाही के चेहरे की रगत नहीं बदली। दुकानदार की व्यवहार-कुशलता धरी की धरी रह गई। उसे सिपहिया भाषा मे समझदार आदमी बने रहना ही श्रेयस्कर लगा। एक सौ दस रुपये के लिए क्या राड मोल लेनी! वह भी हाकिम से। यत्रवत् एक सौ दस रुपये निकाल सिपाही के हाथ मे थमा दिए।

सिपाही जी के होठो पर मुसकान थिरक गइ। ऐसी मुसकान जो सही तरीके से सरकारी ड्यूटी बजा लाने पर हर सरकारी कर्मचारी के होठो पर बाजाब्ता उभर आती है। वह मस्ती से डडा घुमाते हुए बटनवाले की दुकान से निकले और दर्जी की दुकान की ओर चल दिए। दर्जी शहर मे नामी था। टेलर मास्टर कहलाता था। सिपाही जी उससे भी सरकारी बटन टकवाने की सरकारी ड्यूटी को सही अजाम देना चाहते थे, लेकिन लाख सोचने पर भी कोई ढग की जुगत नहीं सूझ रही थी। धर्म-सकट आ पडा था। सरकारी खोपडी मे सरकारी जुगाड नहीं बैठ रहा था। बटन वाले के सामने तो सरकारी धर्म की लाज रह गइ थी लेकिन दर्जी के सामने यह इज्जत कैसे बचाये? अपनी सूझ-बूझ और अनुभव-ज्ञान पर भरोसा कर उन्होंने सरकारी कोट दर्जी के सामने कर दिया, "दरोगा जी का है, बटन टकना है।"

टेलर मास्टर ने पहले कोट को देखा, फिर सिपाही को और हाक लगायी "ओ सुरतिया, चाय लाओ।"

सिपाही जी ने चाय आने दी। माहौल को थोडा गरमाना जरूरी था। ठड मे सूझ-बूझ पक नहीं रही थी।

टेलर मास्टर ने दरोगा जी के कोट को हाथ मे ले लिया और देखकर कहा-"लगता है धोबी ने तोडा है बटन। अब इस मेल का बटन भी मिलना मुश्किल होगा, फिर भी मै देखता हू " कहकर टेलर मास्टर अपने बटन-स्टॉक की ओर मुड गए।

सिपाही जी ने विनम्रता से अपनी मुट्ठी खोल बटन पेश कर दिया "दरोगा जी ने बटन साथ भेजा है वह किसी का एहसान नही लेते।"

टेलर मास्टर कृतार्थ हो गए। बोले, "मै क्या जानता नही हू। अरसे बाद आए है इमानदार दरोगा इलाके मे। सारे बाजार मे चर्चा है। लीजिए, आप चाय पीजियेगा।"

सिपाही ने गरमागरम चाय की चुस्की ली। बात को आगे बढाते हुए बोले "मै तो बटन टकवाते-टकवाते तग आ गया हू। आए दिन टूटता रहता है बटन बस बटन टकवाने के अलावा थाने का कुछ काम ही नही कर पाता।"

"इस बार आप बेफिक्र रहे, मै अपने हाथ से टाक रहा हू। कोट फट जायगा पर बटन नही टूटेगा।" टेलर मास्टर ने अपने नाम और प्रसिद्धि के अनुरूप दावा किया।

"महीन-दो महीने को तो छुटकारा मिल जाएगा न?" सिपाही ने और आश्वस्त होना चाहा।

"महीने-दो महीने! अजी सालभर के लिए बेफिक्र हो जाइए! मेरी गारटी है!" कहकर टेलर मास्टर ने बटन मे दो ऐठन ओर ज्यादा दे दीं।

"साल भर की गारटी पक्की है न?" सिपाही जी अभी तक भी आशंकित थे।

"मेरा टाका बटन टूट जाए तो जुर्माना भरने को तैयार हू। आप चिता न करे। बहुत मजबूती से टाका है।" टेलर मास्टर ने दरोगा जी का कोट सिपाही जी को वापस कर दिया। सिपाही जी के सरकारी ज्ञान-चक्षु खुल गए। लहजे मे पूरी मिठास भरकर बोले, "देखिये, दरोगा जी का माल है। वह मेरी बात तो मानेगे नहीं आप एक कागज के पुर्जे पर गारटी लिख दीजिये। उनको तसल्ली हो जायेगी।"

टेलर मास्टर थोडा सकपकाये। सिपाही जी के चेहरे को निहारा। सिपाही जी निर्विकार मुसकरा रहे थे। मुसक्राहट मे मित्रभाव था। दरोगा जी का मामला है। बटन की गारटी मे क्या जाता है न हुआ तो दूसरा लगा दूगा। सो एक पर्ची पर लिख दिया–'एक साल की गारटी'।

सिपाही ने गारटी पढी। बोले "आगे यह भी लिख दो न कि अगर बटन टूटा तो सो रुपये जुमाना भरोगे। खाली-पीली गारटी से तो दरोगा जी लाल-पीले हो जायेगे।"

अब टेलर मास्टर को लगा कि वह फस रहा है या फसाया जा रहा है।

मुफ्त मे बटन तो टक चुका था और फिर भी दरोगा जी के लाल-पीले होने की नोबत आने लगी थी। आयी बला को टालने की गरज से उन्होंने फिर लिखा 'गारटी टूटने पर सौ रुपये का जुर्माना'।

सिपाही ने गारटी उठाई कोट सभाला ओर आश्वस्त-से होकर लौटने के लिए मुड गये। कुछ सोचकर फिर घूमे। टेलर मास्टर के पास आये। बोले "म तो फस गया अब दरोगा जी की डाट जरूर पडेगी। आपने तो सा रुपये की जुर्माने की गारटी लिख दी, लेकिन इसे पूरी कान करेगा? जब बटन टूटेगा तो आप तो वहा होगे नही। दरोगा जी तो हमी से सा रुपये धरवा लेगे। वह बडे ऑफिसर ह ओर हम मातहत। कुछ कह भी न पायेगे। आपके सा रुपये के चक्कर मे अपनी तो नोकरी दाव पर लग गइ समझो।"

टेलर मास्टर ने प्रतिवाद किया "पर बटन टूटा तो नही! आप क्यो घबरा रहे ह? बटन कही नही जायेगा।"

"यह खूब रही! बटन का क्या भरोसा कभी भा टूट सकता हे। अब आपके बटन के चक्कर मे मेरा नोकरी तो खतरे मे पड गयी न! क्या सा रुपल्ली की बात और कहा पुख्ता सरकारी नोकरी!"

दरअसल अपनी सूझ-बूझ से सिपाही जी टेलर मास्टर को समझा रहे थे कि "बच्चू, अब तुम फस चुके हो, निकल नहीं पाओगे।"

टेलर मास्टर ने फिर दिलासा दिया "आप बिलकुल बेफिक्र रहे बटन टूटने वाला नही ह।"

अब सिपाहा जी तेश खा गये। बोले "आप अपने बटन को देख रहे हैं और मुझे अपना नाकरी की चिता खाए जा रही है। अगर दरोगा जी को गारटी के सो रुपये नही दिए तो मेरी नौकरी आज ही खटाइ मे पड गयी समझो। जब दरोगा जी रुपये मागेगे तो मै कहा से दूगा भला, मै तो गया काम से।"

सिपाही जी के तैश मे रोब भी भरपूर था और झुझलाहट का प्रदर्शन भी।

लबी सास भरकर टेलर मास्टर ने पूछा "फिर मुझे क्या करना होगा?"

"आपने मुझे फसाया है तो आप ही निकालिये। मेरी नोकरी को तो आच न आये। आप मुझे सौ रुपये अभी दे दीजिये। मै गारटी पूरी करने के लिए इन्हे हमेशा अपने पास रखूगा। जैसे ही बटन टूटेगा दरोगा जी को दे दूगा। मेरी नोकरी बची रहेगी।"

"लेकिन बटन नही टूटा तो?"

"म गारटी पीरियड के बाद आपके सो रुपये वापस कर दूगा। इसमे हेर-फेर की कोई बात ही नही ह। आपकी गारटी भी रहेगी आर मेरी नौकरी भी।"

टेलर मास्टर अब तक समझ चुका था कि वह बुरी तरह फस चुका है। जान छुडाने के लिए उसने गारटी के सौ रुपये सिपाहा को थमा दिये। सिपाही जी के होठो पर फिर से मुसकान खेल गइ। वही सरकारी ड्यूटी की सफलता वाली मुसकान।

सिपाही जी ने जब थानेदार साहब को बटन-टका कोट लौटाया तो उनकी मुखमुद्रा पर न कोई गुस्सा था न झुझलाहट। न वह पैर पटक रहा था और न हाथ झटक रहा था। अनुभवी दरोगा जी को लगा कि कहीं दाल मे काला है। उन्होंने पूछा, 'बटन कहा टकवाया?'

सिपाही जी ने टेलर मास्टर का सुप्रसिद्ध नाम बता दिया और साथ ही बटनवाले का नमस्कार भी पहुचा दी। बस गारटी अपनी जेब मे ही दबा ली।

दरोगा जी ने चुपचुप अपना एक विश्वासपात्र टेलर मास्टर और बटनवाले के पास भेजा और पूरा विवरण सकलित किया। पूरी जानकारी प्राप्त कर दरोगा जी ने अपना सिर पकड लिया। अब वह सिपाही की इस व्यवहार-कुशलता का क्या करे? वह तो लहरे भी गिनेगा तब भी माल बनाएगा। इतने विद्वान आदमी से बैर! इतने बडे कलाकार से द्वेष! दरोगा जी को लगा उन्हे अपनी राय बदलनी होगी। उसूल ढीले करने होगे। हृदय परिवतन करना होगा। वैमनस्य त्यागना होगा। सह-अस्तित्व के सिद्धात को अपनाना होगा। समझौता करना होगा।

उन्होंने सिपाही जी को बुलाया, "सारा माल अकेले-अकेले हजम करोगे?"

सिपाही जी ने दरोगा जी के बदले स्वर को भापा और सहज मुद्रा अपनायी "नहीं बीस प्रतिशत आपका है?"

"पर मैं तो पचास प्रतिशत लेता हू।" दरोगा जी चहके।

"मै तो बीस प्रतिशत दता रहा हू।" सिपाही जी की मुखमुद्रा सोम्य थी। सहज।

"चलो निकालो।" दरोगा जी ने समझौता करना ही श्रेयस्कर समझा।

सिपाही जी ने चालीस रुपये निकालकर दरोगा जी की ओर बढा दिए।

"दो रुपये और।" दरोगा जी ने अपने मस्तिष्क के केलकुलेटर पर हिसाब जोड रखा था।

"आगे हिसाब मे लग जायेगे।" कहकर सिपाही जी मुसकराए। समझौता हो गया था। सकट टल गया था। सरकारी आन और मर्यादा सुरक्षित रह गयी थी।

'उमंग' की व्यंग्य कथाएं : कुछ सम्मतियां

मै ता बस यही कहूगा कि ये व्यग्य रचनाए अद्वितीय ह। वास्तव मे आप विद्वान और बुद्धिमान साहित्यकार ह।

ए एन गुप्ता मथुरा

काफी पैने व्यग्य हैं। सबसे अधिक मुझे आपकी लखन-शली न प्रभावित किया ह। रचना का प्रवाह इस कदर चलता है कि पढने का उत्सुकता बनी रहती ह।

डॉ फकीरचन्द शुक्ला, लुधियाना

आपकी भाषा-शली कथा-वस्तु तथा प्रवाह और प्राजलता प्रशसनीय ह। बधाइ।

सतोष दुबलिश, राजीव प्रकाशन, मेरठ

व्यग्य मे जो तीव्रता और पनापन हाना चाहिए, वह आपकी रचनाआ म पर्याप्त रूप म ह।

देवेन्द्र कौर, मुजफ्फरपुर

आज ऐसी ही विचारोत्तजक तथा व्यग्य-प्रधान कथाओ की आवश्यकता ह।

राधाकान्त भारती, नई दिल्ली

आप भारतीय समाजिक एव राजनीतिक व्यवस्थाआ की खामियो पर व्यग्य करन म माहिर है। यही कारण हे कि ठोस विषया क हाते हुए भी आपकी रचनाए राचक और श्रेष्ट हो जाती हैं।

नरेन्द्र देवागन, रायपुर

अब ता आप यह बताए कि कितनी दफा यह प्रमाण-पत्र भेजू कि आप बहद चुटील व्यग्य लिखत है।

सुरेन्द्र चतुर्वेदी, अजमेर

आपकी रचना सामाजिक प्रतिष्ठा क झूट दम्भ व भ्रष्टाचार पर करारा तमाचा ह।

अर्चना सौशिल्य, पटना

आपकी व्यग्य कथाए आधुनिक परिवेश म व्याप्त विसगतिया विद्रूपताआ एव विकृतिया का रखाकित करत हुए उन पर करारा प्रहार करता ह।

डॉ रोहिताश्व अस्थाना, हरदोइ



सत्यप्रकाश अग्रवाल 'उमंग'

जन्म [illegible]

शिक्षा [illegible]

व्यापार [illegible]

परिवार [illegible]

विश्वास [illegible]

निवास [illegible]